योगविद्या

वर्ष 15 अंक 7
जुलाई 2026

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2026

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं प्लेट : गुरु पूजा

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

गुरु

गुरु पर ध्यान शाश्वत सुख और आनन्द के साम्राज्य में प्रवेश दिलाने वाली कुंजी है। यह ऐसा राजमार्ग है जो शिष्य को दिव्य चेतना के लक्ष्य तक सीधे पहुँचा देता है। गुरु पर निरन्तर ध्यान करने से शिष्य का मन शान्त होता तथा उसकी अन्तर्प्रज्ञा जागृत होती है। जब तक शिष्य गुरु की शरण में है तब तक उसका मन किसी भी चीज से विचलित नहीं हो सकता। सभी द्वन्द्वों, संशयों और शंकाओं का स्वयमेव समाधान हो जाता है।

गुरु के चरण-कमल दैवी कृपा के माध्यम हैं। जब शिष्य उन पर ध्यान करता है तब वह सचमुच शाश्वत आनन्द में निवास करता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 15 अंक 7 जुलाई 2026
(प्रकाशन का 64वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 शिष्यत्व की कसौटी
11 गुरु-शिष्य संबंध का आधार
18 गुरु परम्परा की शिक्षाएँ
28 गुरु तत्त्व
33 गीता में गुरु-भक्ति
37 गुरु-प्रेरणा में जीना
42 गुरु-शिष्य संबंध में प्रेरणा की भूमिका
45 अविस्मरणीय अनुभूतियाँ

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

शिष्यत्व की कसौटी

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

एक बार गुरु को एक साधक को आश्रम से निकालना पड़ा। उस साधक को हटाने के कुछ समय बाद गुरु ने आश्रम के सचिव और कुछ अन्य शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा, 'नैतिक पतन एक साधक के लिए अवांछनीय है और एक संन्यासी के लिए लज्जाजनक। अगर व्यक्ति वासना के अधीन हो जाता है तो उसे मैं चेतावनी देकर छोड़ देता हूँ और उसे सुधरने का अवसर देता हूँ। परंतु मैं उस किसी भी प्रयास को बहुत गंभीरता से लेता हूँ, जो आश्रम की शांति और सद्भाव को भंग करे, भगवान के कार्य में बाधा डाले, और

यहाँ के कार्यकर्ताओं के बीच फूट डालने की कोशिश करे। तुम्हें ऐसे उपद्रवी लोगों से सावधान रहना चाहिए, जो संस्था के लिए एक घातक नासूर हैं, और उन्हें तुरंत हटा देना चाहिए। उनके मामले में मैं कठोर और प्रचंड उपाय अपनाता हूँ, और बिना किसी पूर्व चेतावनी के उन्हें अचानक हटा देता हूँ।'

'मुझे उसके लिए बहुत दुःख है', गुरु ने आगे कहा, 'मैं यह देखना पसंद नहीं करता कि जिसने साधना और त्याग का मार्ग अपनाया है, उसे माया के आक्रमणों से बचाने वाले आश्रम के सुरक्षित आश्रय से वंचित कर दिया जाए। अभी जिस व्यक्ति को आश्रम से निष्कासित किया है, उसके प्रति भी मुझे कृतज्ञता है, क्योंकि उसने यहाँ रहते हुए आश्रम की सेवा की है। लेकिन कोई भी बात, मेरे हृदय में उठने वाली कोई भी व्यक्तिगत भावना, भगवान के कार्य को सुचारु रूप से निर्विघ्न चलाने की मेरी तीव्र आकांक्षा के मार्ग में नहीं आ सकती। जब खरपतवार को उखाड़ना आवश्यक हो, तो हमें ऐसा करने से डरना नहीं चाहिए, क्योंकि यह हमारा कर्तव्य है।'

समर्पण की आवश्यकता

'इन व्यक्तियों में जिस चीज की कमी है, वह है – समर्पण। यदि तुम ईश्वरीय कार्य के प्रति स्वयं को सच्चे मन से और पूर्ण हृदय से समर्पित कर दो, तो ऐसी परिस्थितियाँ कभी उत्पन्न नहीं होंगी। यह आधे-अधूरे मन से की गई सेवा ही है, जो पुराने दूषित संस्कारों को बढ़ने और बड़ा रूप धारण करने का पर्याप्त अवसर देती है, और तुम्हें मार्ग से भटका देती है।'

'तुम दिन-रात काम कर सकते हो, परंतु जब तक समर्पण की यह भावना तुम्हारे हृदय में पूर्ण रूप से जाग्रत नहीं होती, तब तक तुम अपने विश्वास में, दिव्य जीवन के पालन में डगमगाते रहोगे, और मार्ग में बाधाएँ सदैव आती रहेंगी। केवल समर्पण, और केवल समर्पण ही तुम्हारे आत्म-अभिमानी अहंकार को कुचलने और नष्ट करने में समर्थ बनाएगा, तथा तुम्हें साधना के मार्ग पर शीघ्र प्रगति करने योग्य बनाएगा। जब यह भावना तुम्हारे भीतर पूर्ण रूप से विकसित हो जाएगी, तब तुम सच्ची विनम्रता का अर्थ स्पष्ट रूप से समझोगे।'

'आज्ञापालन, समर्पण और आध्यात्मिक संपर्क – ये सब आपस में जुड़े हुए हैं। केवल तभी, जब तुम स्वयं को पूरे हृदय से इस कार्य के लिए समर्पित करोगे, तुम मेरे साथ आंतरिक संपर्क स्थापित कर पाओगे। अन्यथा तुम यहाँ कई वर्षों तक रह सकते हो और बैल की तरह काम कर सकते हो, पर तुम्हें

अधिक आध्यात्मिक लाभ प्राप्त नहीं होगा। छोटी-छोटी व्यक्तिगत इच्छाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ, पसंद और नापसंद की भावनाएँ, और आध्यात्मिक जीवन के बारे में तुम्हारी अपनी धारणाएँ – ये सब इस संपर्क को स्थापित करने के मार्ग में बाधा बनती हैं। तुम्हें प्रतिदिन आत्मनिरीक्षण करना चाहिए और अपनी कमियों को पहचानना चाहिए। तुम्हें हर सुबह माँ गंगा से प्रार्थना करनी चाहिए – यह आपकी परम कृपा ही है कि मैं आपके तट पर हूँ, जबकि संसारभर के करोड़ों लोग आपकी एक झलक पाने और आपके पवित्र जल की एक घूँट पीने की आकांक्षा रखते हैं। माँ, मुझे आशीर्वाद दो कि मैं हृदय से पवित्र बनूँ, त्याग और साधना के इस मार्ग पर दृढ़ रहूँ, सभी दोषों से मुक्त हो जाऊँ, और स्वयं को पूर्ण हृदय से ईश्वरीय कार्य के लिए समर्पित कर दूँ।'

'सोचो, तुम यहाँ किस उद्देश्य से आए हो? दूध के एक अतिरिक्त प्याले या दो फलों के लिए झगड़ने आए हो? संस्था में पद और प्रभुता के लिए लड़ने आए हो? तुम यहाँ आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने आए हो। अपने पूरे मन को इस महान् जीवन-लक्ष्य पर स्थिर करो। किसी भी बात से अपना ध्यान भटकने मत दो।'

'भले ही तुम्हारा लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार न हो, भले ही तुम यहाँ केवल मानसिक शांति पाने के लिए आए हो, फिर भी जब तक तुम यहाँ हो, कुछ दैवी गुणों को विकसित करना तुम्हारा सबसे पहला कर्तव्य है। केवल सद्गुण ही तुम्हें मन की शांति देंगे। इसके विपरीत, यदि तुम अपना सारा समय व्यर्थ की गपशप और दूसरों की निंदा-चर्चा में बिताओगे, तो तुम मन की शांति कैसे पा सकोगे? तुम दूसरों की शांति भी भंग करोगे।'

'यहाँ के सभी वैदान्तिक क्लबों को तुरंत, इसी क्षण समाप्त कर दो। जब तीन आलसी लोग, चाहे वे संन्यासी हों या गृहस्थ, चाय की दुकान पर मिलते हैं, तो वे किस विषय पर बात करते हैं? क्या वे भगवान और साधना के बारे में, मानवता की सेवा या आत्म-साक्षात्कार के बारे में बात करते हैं? नहीं। वे हमेशा किसी-न-किसी व्यक्ति के बारे में ही बात करेंगे। वे अपने गुरु-भाइयों और आश्रम के सचिव के बारे में बात कर सकते हैं, या स्टालिन और चर्चिल के बारे में। वे अपने आप को छोड़कर संसार के प्रत्येक व्यक्ति की आलोचना करने लगेंगे। और जब यह समूह टूट जाता है और इसके सदस्य दूसरे समूहों में शामिल हो जाते हैं, तब नया समूह पुराने समूह की आलोचना करेगा। यह लज्जाजनक है!'

'तुम्हें सदैव निःस्वार्थ सेवा में व्यस्त रहना चाहिए। काम, काम और काम – इस दुष्ट मन को सदा व्यस्त रखने और उसे अपनी शरारतें करने से रोकने के

लिए कर्म से अधिक प्रभावशाली कोई उपाय नहीं है। तुम्हें अपने चारों ओर काम-ही-काम से घिरे रहना चाहिए। तुम्हारे ऊपर हमेशा कम-से-कम एक महीने का काम बाकी रहना चाहिए। तुम्हें कभी यह अनुभव करने का अवसर नहीं मिलना चाहिए कि तुमने सारा काम समाप्त कर लिया है, क्योंकि उसी क्षण तुम मन को उच्छृंखल होकर भागने की छूट दे देते हो। यहाँ काम की कोई कमी नहीं है। मैं तुम्हें इसी क्षण इतना काम दे सकता हूँ कि आने वाले दो वर्षों तक तुम दिन के चौबीसों घंटे व्यस्त रहो।'

'परंतु तुम मेरे निकट आना नहीं चाहते। तुम मुझसे अपने को छिपाते हो। यहाँ के कई निवासियों को देख पाना भी मेरे लिए कठिन हो जाता है। किसी लॉट साहब की तरह तुम अपने कमरे के भीतर अपने को बंद कर लेते हो, और मुझे तुम्हारे द्वार पर प्रतीक्षा करनी पड़ती है कि तुम्हें कुछ काम दूँ। तुम एक ही समय में दो-तीन प्रकार के कार्य अपने ऊपर लेना नहीं चाहते। तुम्हें लगता है कि तब तुम पर काम का बोझ बढ़ जाएगा और तुम्हारी हालत बिगड़ जाएगी। काम तुम्हें कभी कमजोर नहीं करेगा। काम तुम्हारे भीतर नई ऊर्जा भर देगा। जब तुम्हारे हाथ खाली रहते हैं, तभी तुम्हारा बुरा मन व्यस्त हो जाता है। जब तुम सोचते हो कि हाथ का काम समाप्त हो गया है, तब तुम समाचार-पत्र पढ़ने के लिए राम आश्रम भागते हो, या दूसरों की बुराई करने के लिए वेदान्तिक क्लब में शामिल हो जाते हो।'

'तुम सोचते हो कि मुझे कुछ पता नहीं। मुझे सब पता है। यहाँ के हर निवासी के बारे में, यहाँ तक कि नए आगन्तुकों के बारे में भी, मुझे एक-एक बात मालूम है। तुम मुझसे कुछ भी छिपा नहीं सकते। परंतु मेरी प्रकृति है कि मैं बहुत अवसर देता हूँ। किसी के द्वारा की गई छोटी-मोटी मूर्खतापूर्ण गलतियों को मैं अधिक महत्त्व नहीं देता। मैं जानता हूँ कि गलती करना मनुष्य का स्वभाव है। मैं निकट से देखता रहता हूँ कि व्यक्ति अपने को सुधारता है या अपने ही ढंग से चलता रहता है। चुपचाप मैं उसे परिवर्तन का हर अवसर देता हूँ। मैं उसे उचित प्रकार का काम-काज देता हूँ और शास्त्रों के अध्ययन, जप तथा ध्यान में लगे रहने के श्रेष्ठ अवसर देता हूँ। मैं व्यक्ति के दोषों को लगभग अनिश्चित काल तक क्षमा करते रहता हूँ। किसी व्यक्ति के बुरे कर्मों का ज्ञान मेरे भीतर संचित होते रहता है, और जब सीमा पूरी हो जाती है, तब मैं उसे अलग कर देता हूँ।'

'तुम सोचते हो कि मैं केवल करुणा और प्रेम से भरा हूँ। तुम सोचते हो कि मुझे काम करना और दूसरों से काम करवाना प्रिय है। हाँ, ऐसा ही है। पर

तुम मेरे रुद्र-स्वरूप से परिचित नहीं हो। जब कुछ वाक्य रटकर तुम ज्ञान के अभिमान से फूल जाते हो, जब तुम यह कल्पना करने लगते हो कि तुम इस मिशन के लिए अनिवार्य हो गए हो, तब मैं अपने रुद्र-स्वरूप की थोड़ी-सी झलक दिखाता हूँ। भारत को स्वतंत्रता किसी संस्था ने नहीं, एक गांधी ने दिलाई। एक संत पूरे संसार का आध्यात्मिक उत्थान कर सकता है। संस्था तो केवल उसके हाथों में एक साधन है, और वह दूसरों को विकसित होने का अवसर प्रदान करती है। मैं बिना किसी संस्था के भी अपना कार्य चला सकता हूँ। आज भी मैं इस सोसाइटी को भंग कर सकता हूँ, भिक्षा माँग सकता हूँ, गुफा में रह सकता हूँ और अद्भुत कार्य कर सकता हूँ। मुझे बी.ए. या एम.ए. की उपाधियों का मोह नहीं है। यदि बी.ए. लोग सोसाइटी छोड़ दें तो कुछ एम.ए. डिग्रीधारी इसमें शामिल होने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। यदि दूसरे दर्जे के लेखक आश्रम छोड़ दें, तो कल प्रथम दर्जे के लेखक इसमें शामिल हो जाएँगे। संसार में महत्त्व केवल एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व का होता है, हजारों अधकचरे साधकों का नहीं।'

त्याग और संतोष

'आज भी मैं तुम्हें त्याग का उदाहरण दे सकता हूँ। मैं दो सूखी रोटियों और गंगाजल पर जीवन बिता सकता हूँ। अत्यधिक काम, आर्थिक चिंताएँ और सबसे बढ़कर मधुमेह मुझे शरीर को कुछ सुविधाएँ देने के लिए विवश करते

हैं। तुम्हें अंदाज भी नहीं है कि मैं प्रतिदिन कितनी दिशाओं में कितनी ऊर्जा खर्च करता हूँ। मुझे वह ऊर्जा शरीर को वापस देनी पड़ती है और उसे सेवा के योग्य स्वस्थ अवस्था में रखना पड़ता है। इन सबके बावजूद मैं एकादशी को पूर्ण उपवास करता हूँ और सप्ताह के कई दिनों तक नमक-रहित भोजन लेता हूँ। क्या यहाँ कोई ऐसा करता है?'

'इसके विपरीत तुम दूध के एक प्याले या कुछ फलों के लिए झगड़ रहे हो। यदि इस युवावस्था में, जब तुम तेजस्वी ऊर्जा से भरे हुए हो, तुम आत्म-संयम, त्याग और तपस्या का अभ्यास नहीं करोगे, तो फिर कब करोगे?'

'तुम्हारे भीतर संतोष नहीं है। इसी कारण तुम्हारे चेहरे पर आध्यात्मिक तेज नहीं है। यदि तुम्हारे भीतर संतोष होगा, तो तुम्हारे मुख पर तेज होगा, आँखों में चमक होगी और तुम शांति तथा आनंद बिखेरोगे। परंतु जब तुम्हारा हृदय तृष्णाओं और इच्छाओं से चूर-चूर हो रहा हो, जब तुम संसार की छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए निरंतर लालायित रहते हो, तो तुम कौन-सी आध्यात्मिक प्रगति प्राप्त कर सकते हो? ऐसे लोगों के लिए तो बेहतर है कि वे संसार में जाएँ, विवाह करें और एक उचित गृहस्थ जीवन जिएँ। अन्यथा वे दोनों से वंचित रह जाएँगे। वे सांसारिक जीवन के सुखों से भी अपने को वंचित रखेंगे और आध्यात्मिक क्षेत्र में भी कुछ प्राप्त नहीं करेंगे। यहाँ निष्क्रिय पड़े रहने का कोई लाभ नहीं है। तुम्हें गतिशील होना चाहिए। तुम्हें उत्साह, शक्ति और उमंग से भरा होना चाहिए।'

'मान लो, तुम गृहस्थ जीवन जी रहे होते, तो क्या तुम प्रतिदिन दूध और फल लेते? अपने आप से पूछो। यदि तुम महीने के 50 रुपये कमाते और पाँच सदस्यों के परिवार के मुखिया होते, तो क्या तुम केलों पर खर्च महीने में एक बार भी करते? कभी नहीं। इसके विपरीत, तुम सोचते कि यह पैसे की बरबादी है। क्यों? इसलिए कि तुम महसूस करते कि परिवार के पालन-पोषण की जिम्मेदारी तुम्हारी है, और बच्चों की शिक्षा के लिए तुम्हें धन बचाना चाहिए। पर यहाँ तुम ऐसी कोई जिम्मेदारी अनुभव नहीं करते। संस्था की प्रगति के लिए तुम्हारे भीतर कोई भावना ही नहीं है। यदि तुम्हारे भीतर यह भावना होती, तो कोई समस्या ही न होती।'

'तुम्हारे सभी प्रयास इस उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए होने चाहिए; यह सोचने के लिए होने चाहिए कि आश्रम की आय का सर्वोत्तम ढंग से उपयोग कैसे किया जाए, ताकि संसार का अधिक-से-अधिक कल्याण हो सके। तुम्हें

इस उद्देश्य के साथ अपने को पूर्ण रूप से एक कर लेना चाहिए, तभी और केवल तभी तुम समझ पाओगे कि कर्मयोग का अर्थ क्या है।'

'पर तुम्हें आश्रम में रुचि नहीं है। तुम सोचते हो कि यहाँ के अधिकारियों को धोखा देकर अपने स्वार्थ सिद्ध कर सकते हो। तुम्हें निजी धन की थैली रखना अच्छा लगता है। तुम्हारे अपने बैंक खाते हैं। निजी धन-थैली और चेक-बुक एक सच्चे साधक के लिए सबसे बड़ा अभिशाप हैं। वे तुम्हें सांसारिकता की अथाह गहराइयों में गिरा देते हैं।'

'जब तुम ऐसी संस्था में हो जो तुम्हारा पालन-पोषण करती है, तुम्हारी देखभाल करती है और तुम्हें जो कुछ चाहिए वह सब देती है, तो निजी धन रखने की आवश्यकता कहाँ है? यदि तुम संस्था की निःस्वार्थ सेवा कर रहे हो और बाहर तुम्हारा कोई निजी संपर्क नहीं है, तो तुम्हारी निजी धन-थैली के लिए पैसा कहाँ से आता है? निजी धन की इच्छा तुम्हें मतवाला बना देती है। वह तुम्हें अपने निजी खाते के लिए पैसा पाने के लिए तरह-तरह के दूषित उपाय अपनाने के लिए प्रेरित करती है। तुम आश्रमवासी के रूप में आगंतुकों की सेवा करते हो, उनके सामने दाँत दिखाते हुए प्रसन्नता जताते हो, आश्रम की शिकायत करते हो, और फिर उनसे कुछ रुपये पाने के लिए उनकी सहानुभूति का व्यापार करते हो।'

'तुम्हारी सभी आवश्यकताएँ आश्रम द्वारा पूरी की जाती हैं। फिर तुम्हें धन की आवश्यकता क्यों है? धन के माध्यम से तुम कई बुरी आदतों को विकसित करते हो। तुम्हारे पुराने दबे हुए दूषित संस्कार प्रबल हो जाते हैं। तुम्हारा पतन हो जाता है। तुम दूसरों को भी अपने साथ घसीटने का प्रयास करते हो। तुम अपना अलग गुट बना लेते हो। तुम अपने गुरु की परवाह नहीं करते और उनकी आलोचना तक करने लगते हो। थोड़ा-सा धन तुम्हारे भीतर और अधिक धन की लालसा पैदा कर देता है। प्रतिष्ठा और धन पाने के प्रयास में तुम आश्रम के महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ताओं के बीच फूट डालने और वातावरण को बिगाड़ने की कोशिश करते हो। तुम एक खतरनाक और विनाशकारी तत्त्व बन जाते हो। शक्ति और धन की लालसा तुम्हारा सिर घुमा देती है। तुम असामंजस्य पैदा करते हो। यहाँ तक कि तुम अपने गुरु के विरुद्ध होकर उनके मिशन को नष्ट करने की सीमा तक पहुँच जाते हो।'

'ऐसे लोग अपने कर्मों के गंभीर परिणामों को नहीं समझते। गुरु-द्रोह, अर्थात गुरु के प्रति विरोध, सबसे नीच अपराध और सबसे बड़ा पाप है। जो

गुरु-द्रोह में लिप्त होता है, वह वृद्धावस्था में भयंकर कष्ट भोगेगा। कुष्ठ जैसे भयानक रोग से पीड़ित होकर, मुँह में घावों से भरा हुआ, भोजन-वस्त्र से रहित, देखभाल के बिना, भूख-प्यास की असहनीय पीड़ा सहते हुए, कठोर मौसम की मार से त्रस्त होकर, वह कष्ट और वेदना में धीमी मृत्यु मरेगा।'

'गुरु की सेवा की तो बात ही क्या! जिस आश्रम या संस्था ने तुम्हें कुछ समय तक भोजन और आश्रय दिया है, उसकी भी तुम्हें पूरे हृदय से सेवा करनी चाहिए। कृतज्ञता एक स्वर्णिम सद्गुण है। यदि तुम्हारे भीतर यह मूलभूत गुण भी नहीं है, जो पशुओं तक में भी पाया जाता है, तो तुम ईश्वर-साक्षात्कार की आशा कैसे कर सकते हो?'

'आरंभ से ही तुमने जीवन के प्रति गलत दृष्टिकोण अपनाया है। यदि तुमने अपने माता-पिता की सेवा की होती, तो तुम जान पाते कि आज्ञापालन क्या है, सेवा-भाव क्या है। जब यहाँ तुम्हें सेवा का अवसर दिया जाता है, तो तुम सोचते हो, 'मैंने अपने माता-पिता की भी सेवा नहीं की, तो मैं इन लोगों की सेवा क्यों करूँ?' यही तुम्हारे अहंकार की ग्रेनाइट जैसी कठोर अवस्था है। यह केवल बार-बार के आघातों और प्रहारों से, तथा भगवान की कृपा से ही पिघल सकती है।'

आत्मविकास का मार्ग

'निरंतर भगवान का स्मरण करो। लगातार उनके नाम का जप करो। सेवा करो, सेवा करो और सेवा करो। काम करो, काम करो और काम करो। यदि तुम काम नहीं कर रहे हो, तो तुम्हें किसी फलदायी अध्ययन में लगे रहना चाहिए। जब तुम इनमें से कोई भी कार्य नहीं कर रहे हो, तब तुम्हें जप और ध्यान करना चाहिए। मैंने इन सबके लिए आश्रम में ही सभी सुविधाएँ उपलब्ध कराई हैं – काम और सेवा के लिए पर्याप्त अवसर, अध्ययन के लिए पुस्तकें और पत्रिकाएँ, तथा ध्यान के लिए भजन-हॉल, मंदिर और कमरे। और भगवान की कृपा से तुम्हें भोजन और वस्त्र बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हैं। फिर क्या तुम्हें आश्रम-क्षेत्र से बाहर जाने की कोई आवश्यकता है?'

'यह केवल तुम्हारे अपने गलत संस्कारों का उभार है, जो तुम्हें मर्यादा से बाहर ले जाता है, जो तुम्हें गुट बनाने, व्यर्थ की बातें करने और निंदा-चर्चा में लिप्त होने के लिए प्रेरित करता है। सेवा, ध्यान और अध्ययन के माध्यम से इन संस्कारों से मुक्त हो जाओ। दूसरों के गुणों को देखो, उनके दोषों के बारे

में कभी मत सोचो। अपने काम से काम रखो, अपने मन को सुधारो! विकास के मार्ग पर बढ़ते रहो, बढ़ते रहो, बढ़ते रहो!'

'मैंने आज जो कहा है, वह आने वाले तीन वर्षों तक तुम्हें सतर्क रखने के लिए पर्याप्त है। तुम सबके प्रति मेरे हृदय में महान् प्रेम है। मैं दिन-रात भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वे तुम सबको विवेक, वैराग्य और ज्ञान का आशीर्वाद दें। इसी कारण मैं तुम लोगों को यह सब बता रहा हूँ। मैं तुम पर कोई कठोर अनुशासन नहीं थोपता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यहाँ लोग विकास की अलग-अलग अवस्थाओं में हैं, और मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक साधक बिना किसी बाधा या रुकावट के अपने स्वभाव के अनुसार विकसित हो सके। मैं चाहता हूँ कि हर साधक अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत करे। मैं उसे अपनी प्रतिभाओं के विकास और उन्नति के लिए पर्याप्त अवसर देता हूँ।'

'इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं अत्यधिक उदार हूँ। मैं तुम्हारे प्रत्येक कार्य को सावधानी से देखता हूँ। तुम्हारे देखने के ढंग से, तुम्हारे बोलने के ढंग से और तुम्हारे व्यवहार की छोटी-से-छोटी बातों से मैं तुम्हारे हृदय को परख सकता हूँ। मैं तुम्हारे दोषों को उसी समय बता सकता हूँ और तुम्हारे भविष्य को आकार दे सकता हूँ। पर मैं नहीं चाहता कि तुम मुझसे डरकर रहो। मैं नहीं चाहता कि तुम भय के कारण मेरी आज्ञा मानो। आज्ञापालन प्रेम और समर्पण से उत्पन्न होना चाहिए। आज्ञापालन आध्यात्मिक रूप से विकसित होने की सच्ची इच्छा से उत्पन्न होना चाहिए। भय और डर से बाध्य होकर किया गया आज्ञापालन टिकेगा नहीं; वह सच्चा और पूर्ण हृदय से नहीं होगा। तुम केवल अनुशासन से भागने के अवसर की प्रतीक्षा करते रहोगे। इसलिए मैं तुम्हें मार्ग पर चलाने के लिए यह प्रेमपूर्ण तरीका अपनाता हूँ।'

'यहाँ रहो और सद्भाव एवं सामंजस्य के साथ काम करो। दूसरों की आलोचना मत करो। आश्रम के वातावरण को बिगाड़ने का प्रयास मत करो। यदि तुम सचिवों को समस्याओं और चिंताओं से मुक्त कर दो, तो वे कितना अच्छा कार्य कर सकेंगे! अभी तो उनका सारा समय विवादों को सुलझाने और आश्रमवासियों की छोटी-छोटी इच्छाओं को पूरा करने में चला जाता है। यदि तुम सब मिल-जुलकर सामंजस्य से काम करो, तो अद्भुत कार्य कर सकते हो। भगवान तुम सबको विवेक और आंतरिक आध्यात्मिक शक्ति का आशीर्वाद दें!'

गुरु-शिष्य संबंध का आधार

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जैसे-जैसे संसार में शिष्यों के अन्दर शिक्षा प्राप्त करने की भावना बढ़ती जा रही है वैसे-वैसे गुरु लोग भी बढ़ते जा रहे हैं। कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि गुरु अपने को कुछ कहलाना नहीं चाहता, मगर शिष्य उसे गुरु कहने लगते हैं। यह संसार बड़ा विचित्र है, यहाँ भगवान बनना तो सरल है, मगर गुरु बनना बहुत ही कठिन।

आत्मा के अन्दर अंधकार है और उस अंधकार को दूर करने में जो समर्थ होता है, उसे कहते हैं 'गुरु'। केवल अच्छे प्रवचन देने वाला गुरु नहीं होता। वह शिक्षक होता है। सुन्दर ग्रंथ लिखने वाला भी गुरु नहीं होता। वह लेखक है। किसी चीज का अध्ययन करके उसके विषय को स्पष्ट रूप से उद्घाटित करने वाला भी गुरु नहीं होता। वह दार्शनिक है, चिन्तक है। परन्तु जो न अच्छा प्रवचन देने वाला हो, न अच्छा लेखक हो और न ही किसी विषय को स्पष्ट रूप से समझाने वाला हो, फिर भी यदि उसने अपनी आत्मा का विचार कर लिया हो; न केवल अपनी आत्मा का विचार बल्कि गहन अंधकार में

टॉर्चलाईट की तरह प्रकाश दे सकता हो, वही गुरु है। इसलिए गुरु की अधिक तारीफ आवश्यक नहीं। शिष्य समर्थ हो तो गुरु स्वतः उठ जाता है और यदि शिष्य असमर्थ हुआ तो समर्थ गुरु भी सोये रहते हैं। यह सारी महिमा शिष्य की है, गुरु की नहीं। ईसाई धर्म के प्रवर्तक, ईसा मसीह को सूली पर लटका दिया गया, पर उनके चेलों ने उनको दुनिया का सम्राट् बना दिया। यह शिष्य की महिमा नहीं है क्या? इसलिये मानव को अपने आध्यात्मिक जीवन का श्रीगणेश शिष्य के रूप में करना चाहिये।

मानव जीवन का प्रयोजन

मानव जीवन का चरम उद्देश्य केवल एक है। इसके दो उद्देश्य नहीं हो सकते। जिसके पास दो रास्ते हैं वह किसी भी मंजिल का रास्ता तय नहीं कर सकता। वह द्वन्द्व में ही भटक जाता है। इसी तरह जीवन का भी एक ही लक्ष्य है और वह लक्ष्य है मनुष्य के अन्दर छिपी हुई अज्ञात शक्ति का प्रकटीकरण।

हमारे शरीर के अन्दर एक विचित्र चीज छिपी हुई है। वह चेतना स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है, अनुभव स्वरूप है। उसका कोई रूप नहीं, कोई रंग नहीं। उसका कोई आकार-प्रकार नहीं है। विचित्र है वह। मनुष्य को उसकी विचित्रता का आभास तभी मिलता है जब उसका जागरण होता है। उस समय बड़ा आश्चर्य होता है, बड़ी-बड़ी अनुभूतियाँ होती हैं। उसका जागरण हो जाने पर देश और काल का कहीं पता नहीं चलता। महात्मा लोग ठीक कहते हैं कि जब वह विचित्र चीज जागती है तो सारी अनुभूतियाँ बन्द हो जाती हैं। उसी अनुभूति को हम अनुभव कर शब्दों के माध्यम से प्रकट करते हैं। उस अनुभव को बतलाना, समझाना या उसका निश्चित निर्णय देना सम्भव नहीं है। यह अनुभव जब किसी को होता है तब वह अपने आप ऊँचा उठने लगता है।

इस जीवन का मात्र एक लक्ष्य है और उसी लक्ष्य को लेकर मनुष्य पैदा हुआ है। मनुष्य विषयों के भोग के लिये पैदा नहीं हुआ है। हम सांसारिक भोग को देखते या भोगते जरूर हैं, लेकिन सांसारिक भोग ही मनुष्य का लक्ष्य नहीं। भोग के लिये पशु का जीवन है, क्योंकि पशु भोग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता। इसी प्रकार हमारे अन्दर भी जन्म-जन्मान्तर के संचित संस्कार स्वरूप पशुत्व की भावनायें भरी पड़ी हैं, जिन्हें बिना गुरु-कृपा के पार नहीं किया जा सकता और इसीलिये जीवन में गुरु अपेक्षित है।

शिष्य की योग्यताएँ

वास्तविक रूप में देखा जाय तो गुरु की मर्यादा का रक्षक शिष्य ही होता है। जो वास्तविक शिष्य होता है, उसे डण्डे से मारो, तलवार से मारो या गर्दन ही क्यों न काट दो, पर वह अपने शिष्यत्व की सीमा का कभी भी उल्लंघन नहीं करता। इसीलिये गुरु के व्यक्तित्व पर शिष्य की भी छाप होती है। तब हम आज से गुरु पूर्णिमा को शिष्य पूर्णिमा के रूप में क्यों न बदल दें। शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु-प्रदत्त साधना का पालन करते हुए गुरु के मुख से उच्चारित वाणी का मन, वचन और कर्म से पालन करे। ऐसे शिष्य ही साधना के मार्ग में आगे बढ़ते हैं। इस बात को अच्छी तरह जानना चाहिये।

यूनान में स्पार्टा नामक एक गाँव है। प्राचीन काल में वहाँ जब बच्चा रात को पैदा होता था, तब माँ उसको आँगन में रख आती थी और सुबह जाकर देखती थी कि बच्चा जीवित है या नहीं। यदि सुबह तक बच्चा आँगन में पड़ा-पड़ा मर गया तब तो मर ही गया। पर अगर बच्चा जीवित पड़ा रहता तो वह उसे उठा लाती और वह बच्चा जब तक जिन्दा रहता, स्वस्थ और मजबूत रहता था। इसी प्रकार से शिष्य को भी स्पार्टन होना चाहिये। मजबूत बनने के लिये हमें अपनी प्रकृति, अपने स्वभाव और अपने संस्कारों को बदलना होगा। हम लोग दुनिया में कई संस्कारों को लेकर पैदा हुए हैं। इसके अलावा हमने खुद-ब-खुद भी कुछ संस्कार बनाये हैं। हम लोग इन्हीं संस्कारों की परिधि में घूमते रहते हैं, उनसे मुक्त नहीं हो पाते। अब आवश्यकता इस बात की है कि हम उन संस्कारों की परिधि से मुक्त हों। मन अनुकूल है या नहीं, इसकी चिन्ता अभी नहीं करनी है। इसकी चिन्ता करने से ही शिष्यगण अपने स्वभाव में परिवर्तन लाकर गलत रास्ते की ओर बढ़ जाते हैं। यही कारण है कि वे दुःखी रहते हैं।

शिष्य जब दुःखी रहता है तब वह व्यर्थ ही ईश्वर पर दोषारोपण करता है। वह यह नहीं सोच पाता कि अपने दुःख का कारण मैं स्वयं हूँ, या मेरा मन ही इसका मूल कारण है। शास्त्रों में कहा गया है – *मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः*, अर्थात् मन ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण है। इस बात को आप लोग अच्छी तरह जानते हैं। तब शिष्य को करना क्या है? सबसे पहले उसे स्वयं को आत्मशिक्षा देनी है, अपने को प्रशिक्षित करना है। तब जाकर वह शिष्य के वास्तविक अर्थ को जान पायेगा।

गुरु और शिष्य केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, दुनिया के हर कोने में हैं। शिष्य का मतलब वह जो अपने को अनुशासित करे। शिष्य अनुशासनहीन

नहीं होता। शिष्य वही है जो सीखता है, अपने को प्रशिक्षित करता है। इसलिये योग साधना के द्वारा या भक्ति के द्वारा या किसी अन्य माध्यम से शिष्य सर्वप्रथम अपने स्वभाव को बदलने की कोशिश जरूर करता है।

गुरु मंत्र

मैं आप लोगों को एक बात और बतला देना चाहता हूँ, जिस विषय पर चेले लोग प्रायः पूछा करते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है जिसका कुछ अंश मैं अभी आपको बतला रहा हूँ। प्रायः आप लोग माला से किसी मंत्र को बार-बार दोहराते हैं। इसको कहते हैं जप। अगर गुरु से शिष्य को मंत्र प्राप्त हुआ है और वह उसका नियमित रूप से जप करता है तो उसके मन की चंचलता निश्चित रूप से नष्ट हो जाती है। पहले आप मन को मंत्र या माला पर लगाते हैं और यह लगता नहीं है, क्योंकि इसका स्वभाव अत्यन्त चंचल है। इसको एक जगह पर लगाये रखना सरल काम नहीं, यह अत्यन्त कठिन कार्य है। यदि आप सोचेंगे कि मैं मंत्र का जप तभी करूँगा जब मेरा मन कहेगा तब तुम न मंत्र का जप कर सकोगे और न ही मानसिक शांति प्राप्त कर सकोगे। इस बात को याद रखो।

एक आदमी समुद्र के पास गया और सोचने लगा कि जब यह लहर आकर चली जायेगी तभी मैं स्नान करूँगा। वह लहर आकर चली गयी। वह फिर सोचने लगा कि जब दूसरी लहर आकर चली जायेगी तब स्नान करूँगा। दूसरी लहर भी आयी और चली गयी। इस प्रकार वह आदमी वहाँ बहुत देर तक खड़ा रहा। वह लहरों को आते-जाते बहुत देर से देख रहा था, मगर स्नान नहीं कर पा रहा था। अब तक उसको घर से आये काफी देर हो चुकी थी। उसके घर वाले उसे ढूंढते हुए वहाँ पहुँचे और उससे पूछने लगे कि इतनी देर से तुम यहाँ क्या कर रहे हो? उसने कहा, 'मैं सोच रहा हूँ कि उस लहर के आने के बाद स्नान करूँगा, मगर क्या करूँ, लहर के पीछे लहर आ रही है।' उसके घर वाले बोले, 'अगर तुम्हें लहरों में स्नान नहीं करना है तो तुम्हारे लिए समुद्र का कोई उपयोग नहीं। समुद्र तरंगमय है, लहर तो इसकी विशेषता है।' इसी प्रकार चित्त भी एक समुद्र की तरह है। उसमें उठने वाली भावनायें ही उसकी लहरें हैं। तुम उन भावना रूपी लहरों की परवाह मत करो। तुम्हें अपना काम चालू रखना है। तरंगें उठती हैं, उन्हें उठने दो। उन्हें तुम रोक नहीं सकते। तुम्हें अपने लक्ष्य का ही ध्यान रखना है।

मन भटकेगा, भटकता रहेगा, मगर तुम अपना जप करते जाना। मन को भटकने दो और तुम ध्यान, उपासना, आदि करते रहो, क्रिया करते रहो, अपना काम करते रहो। बहुत-से लोग कहते हैं, जप करने से क्या लाभ, क्योंकि इससे चित्त एकाग्र नहीं हो रहा है। यह सब आलसी लोगों का कहना है। यह जप न करने का एक बहाना है। आप कहते हैं, 'मैं जप नहीं करता हूँ क्योंकि जब जप के लिये बैठता हूँ तो मन में कहाँ से कहाँ तक के विचार आते हैं। तो मैंने सोचा, जप बन्द कर दूँ और इसीलिये जप बन्द कर दिया है। आखिर जप करने या न करने के बावजूद भी भगवान को जो देना होगा, सो तो देगा ही।' ऐसा सोचने वाला चेला मूर्ख है। एक बात याद रखो। हवा का गुण है बहना, मन का गुण है चंचलता, और आत्मा का गुण है निश्चलता। आत्मा चंचल नहीं है, पर मन बड़ा चंचल है। इस चंचलता के साथ-साथ अपनी साधना को नियमित रूप से बिना किसी महत्त्वाकांक्षा के करते जाना चाहिये। इसी प्रकार करते-करते एक, दो या दस साल में जब साधना पूरी हो जायेगी तब मन अपने आप शान्त हो जायेगा।

'गृहस्थ आश्रम में संन्यास आश्रम की अपेक्षा आध्यात्मिक अनुभव जल्दी प्राप्त होते हैं' – इस तथ्य को मैं अच्छे से समझाना चाहता हूँ ताकि आपके मन में गृहस्थ आश्रम के प्रति कोई हीनता या अपराध की भावना न रह जाय। साधना के द्वारा प्राप्त होने वाला आध्यात्मिक अनुभव संन्यास आश्रम की अपेक्षा गृहस्थाश्रम में जल्दी प्राप्त होता है। इस अनुभव को प्राप्त करने के लिये लोग दूसरे मार्गों में जाते हैं और वे देर से प्राप्त करते हैं। उसी लक्ष्य को गृहस्थ लोग बड़े ही सरल और सहज तरीके से प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिये आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करने की जो सबसे बड़ी साधना है, उसको कहते हैं 'मंत्र साधना'। मंत्र साधना साकार और निराकार, दोनों प्रकार के साधकों के लिये समान रूप से उपयोगी है। गृहस्थ आश्रम में निराकार साधना नहीं हो सकती। गृहस्थ आश्रम में निराकार साधना करने पर कई कठिनाइयाँ, कई समस्यायें सामने आ जाती हैं, जिनसे साधक कभी-कभी सफल नहीं हो पाता है। इसलिये गृहस्थ साधक के लिये मंत्र साधना और साकार उपासना सर्वोत्तम साधनायें हैं।

मंत्र के द्वारा रोग का उपचार होता है तथा जीवन की परिस्थितियों में भी परिवर्तन लाया जा सकता है। इसलिए मंत्र को तुम ईश्वरीय शक्ति के रूप में ग्रहण करना। मंत्रशक्ति से असम्भव को सम्भव किया जा सकता है। ईश्वर तो है, मगर किसी ने देखा नहीं। जिसने देखा सो देखा, मगर तुमने तो नहीं देखा। मंत्र ईश्वर की प्रत्यक्ष शक्ति है। मंत्र रूपी इस ईश्वरीय शक्ति की साधना प्रत्येक व्यक्ति को निश्चित रूप से करनी चाहिये।

हमलोगों ने जिस धर्म और संस्कृति में जन्म लिया है, उसमें मंत्र की महिमा को अनादिकाल से माना गया है। इसके लिये थोड़ा-सा नियम पालन करना चाहिये, क्योंकि मंत्र को सिद्ध करने के लिये चित्त-वृत्तियों का निरोध आवश्यक है। मंत्र को सिद्ध करने के लिये, उसे सफल और सबल बनाने के लिये मानसिक एकाग्रता की अत्यधिक आवश्यकता है। अगर तुम्हारा मन साधना के समय बार-बार भागे, फिर भी यदि तुमने बारह साल में पाँच हजार माला फेर ली, नियम पूरा कर लिया तो मंत्र अपना काम करेगा ही। यह मेरा नहीं, तंत्र शास्त्र का आदेश है। तंत्र शास्त्र में कहा गया है कि साधना घण्टों तक नहीं, थोड़ी देर के लिये भी की जा सकती है।

प्रत्येक मंत्र का एक रूप, एक रंग, एक देवता और एक प्रयोजन होता है। जब हम निष्काम या सकाम भाव से मंत्र का जप करते हैं तो उस मंत्र की

शक्ति या उसके देवता को हम अपने वश में कर लेते हैं। किन्तु मंत्र-साधना में सबसे बड़ा नियम यह है कि यह साधना अपनी मर्जी से नहीं की जाती। इसलिये जीवन में गुरु की आवश्यकता पड़ती है। साधना के क्षेत्र में ज्ञानी गुरु की नहीं, समर्थ गुरु की आवश्यकता है। समर्थ का मतलब जो इस विद्या का ज्ञाता हो। उत्तम गुरु बनने के लिये केवल ज्ञान ही पर्याप्त नहीं, उसमें अटूट साहस, प्रबल आत्मबल और अपार सामर्थ्य की भी आवश्यकता है। मंत्र जानने वाला गुरु एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व है, इसलिए उसे मंत्रशास्त्र का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

एक बार एक व्यक्ति हमारे पास आये और उन्होंने हमसे साधना के बारे में पूछा। उनकी विभिन्न साधनाओं के प्रति उत्कण्ठा थी। हमने कहा, 'आप काली की उपासना करो।' उन्होंने काली की उपासना शुरू की और उनका रास्ता साफ हुआ। यह मैंने आपको एक संकेत दिया कि सम्पूर्ण संसार में जो शक्तियाँ फैली हुई हैं, ये अदृश्य शक्तियाँ हैं। सांसारिक जीवन की आपदाओं को दूर करने के लिये गुरु से प्राप्त मंत्र द्वारा साधक उन शक्तियों का आह्वान करते हैं। इसमें गुरु के बताये निर्देशानुसार ही साधना की जाती है। बस यही एक नियम है। गुरु पूर्णिमा गुरु और शिष्य के आन्तरिक सम्बन्ध को बनाये रखने का सर्वसुलभ और सर्वोत्तम आधार है।

यदि आप गुरु से प्राप्त मंत्र का जप करते जाओगे तो आपकी भावनाओं में अपने आप परिवर्तन होगा। यही शिष्यत्व की निशानी है। मंत्र गुरु और शिष्य के बीच की कड़ी है जो अदृश्य रूप से दोनों के आध्यात्मिक सम्बन्ध को बनाये रखती है। उसी प्रकार गुरु पूर्णिमा भी गुरु और शिष्य के बीच एक अटूट सम्बन्ध कायम रखती है। जिस प्रकार लौकिक जीवन में पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री और भाई-बहन आदि का सम्बन्ध आवश्यक है उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में भी गुरु-शिष्य सम्बन्ध परमावश्यक है। इसलिये भारत या बाहर के देशों में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में किसी-न-किसी प्रकार से गुरु को ग्रहण करने की प्रथा है। यह गुरु पूर्णिमा केवल भारत में ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया में मनायी जाती है और आज के इस पवित्र दिन को सभी शिष्य और साधक प्रेम करते हैं क्योंकि आज के दिन संसार के सभी शिष्य-समुदाय को अपने-अपने गुरुओं से एक अमूल्य, आनन्ददायक प्रसाद मिलता है जो उनके आध्यात्मिक जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

– 1977, गुरु पूर्णिमा महोत्सव, रायपुर

गुरु परम्परा की शिक्षाएँ

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

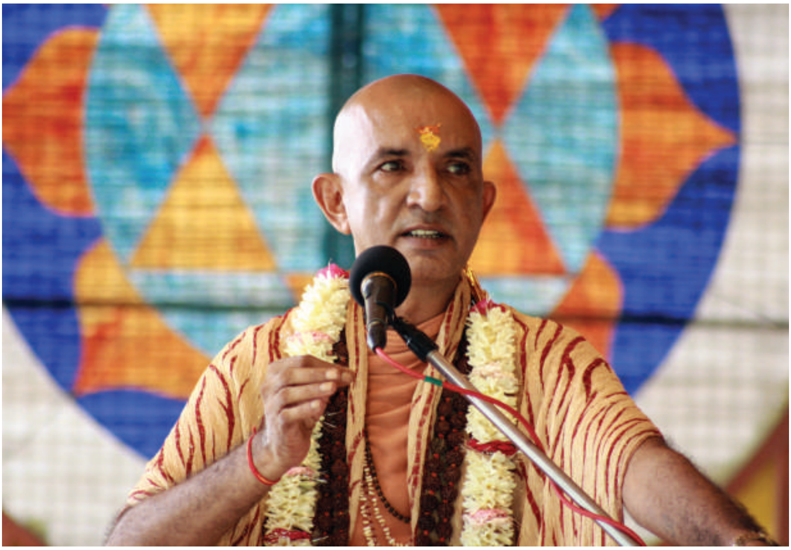

आदिगुरु शंकराचार्य ने अपने जीवनकाल में एक विचारधारा को प्रसारित किया। यह विचारधारा दर्शन, धर्म या सिद्धांत नहीं, बल्कि उनके जीवन का व्यवहार रहा और उसे ही आज हमलोग 'अद्वैत वेदांत' के नाम से जानते हैं। उन्होंने पूरा प्रयास किया कि व्यक्ति एक सकारात्मक मार्ग को अपनाकर अपने जीवन को दिव्य बनाए। जिस प्रकार का जीवन वे स्वयं जीते थे, उसी पद्धति को उन्होंने संसार में प्रसारित किया, लेकिन हर व्यक्ति में वह क्षमता नहीं कि एक संत-महात्मा के जीवन-चरित्र का अनुसरण कर सके या उनकी शिक्षाओं को आत्मसात् कर सके। इसलिए जिस विचारधारा का प्रसारण आदिगुरु शंकराचार्य ने किया, कालांतर में उसे लोग एक दर्शन मानने लगे और उसका एक बौद्धिक विश्लेषण होने लगा। लोग टीकाएँ लिखने लगे, भाष्य लिखने लगे और जिस उद्देश्य से शंकराचार्य जी ने अद्वैत वेदांत का प्रसारण किया था, उस मार्ग से वे हट गए और उसको एक जीवनशैली के रूप में नहीं समझ पाये।

तत्पश्चात्, जब स्वामी शिवानंद जी का इस धरती पर अवतरण होता है तो उनके जीवन के संस्कारों ने उन्हें अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों में स्थापित

कर दिया। इस बात को याद रखिए कि एक संत या महात्मा अपने जीवन के अनुभवों को प्रसारित करते हैं, लेकिन उनके समकालीन लोग, शिष्य या अनुयायी उनके इन जीवन-संबंधी विचारों को पूरी तरह समझ और अपना नहीं पाते। उस संत के प्रस्थान के पश्चात् उनकी जीवनशैली को लोग दर्शन मानने लगते हैं, उसका अध्ययन करते हैं, उस पर व्याख्या करते हैं, लेकिन अपने जीवन में उतार नहीं पाते। वह केवल बुद्धि तक ही सीमित रह जाता है और उससे कोई फायदा नहीं होता, बल्कि खंडन-मंडन में लोग अपने जीवन के उद्देश्य को भूल जाते हैं।

महात्मा की परिभाषा

जब आदिगुरु शंकराचार्य ने अद्वैत वेदांत के विचारों को समाज के सामने रखा, उनके पश्चात् अनेकों लोग भी इस अद्वैत वेदांत के खंडन-मंडन में लगकर इसकी विभिन्न शाखाओं को जन्म देते हैं। कोई कहता है द्वैताद्वैत, कोई कहता है विशिष्टाद्वैत, और इस प्रकार अलग-अलग नाम दिये जाते हैं। बहुत लोगों का यह भी तर्क रहता है कि यह संसार द्वैतमय है, इसमें अद्वैत की अनुभूति किसी को नहीं हो सकती। क्या इसका यह मतलब कि हमारे सब अवतार, सब साधु-महात्मा गलत रहे, जो हमें अद्वैत की शिक्षा देते आये? हम द्वैत में रहते हैं, इसलिए अद्वैत नहीं हो सकता है – यह हमारी सोच की संकीर्णता को दर्शाता है। द्वैत में हमेशा मैं और तुम, दिन और रात, दो अलग चीजें रहती हैं, लेकिन लोग भूल जाते हैं कि दोनों में संधि भी होती है और जहाँ पर संधि होती है, वहाँ पर न उजाला है, न अंधकार है; वहाँ न तुम हो न मैं हूँ, वहाँ न भक्त है, न भगवान हैं, दोनों एक हो जाते हैं। भले ही वह क्षणमात्र के लिए हो, लेकिन एक तो होते ही हैं।

ऐसे बहुत-से लोग हैं, जो इस क्षणमात्र के अनुभव को प्राप्त करते हैं, लेकिन बाद में विवश हो जाते हैं। अपने आचरण, व्यक्तित्व, परिवेश, परिस्थिति के कारण पुनः उनकी वृत्ति बहिर्मुखी हो जाती है और वे पुनः अपने मन, कामनाओं, वासनाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और अहंकार से जुड़ जाते हैं। साधुओं में भी देखा जाता है, और साधकों में भी, कि ध्यान करते हैं, कुछ अनुभूति होती है, किंतु उस अनुभूति को वे स्थायी नहीं बना पाते। दस मिनट ध्यान किया, दस मिनट आनंद आया, आधा घंटा ध्यान किया, आनंद आया, लेकिन अन्य विवशताओं के कारण उस अवस्था को कायम

नहीं रख पाते हैं। यहाँ पर फिर से सम्बन्ध का विच्छेद होता है। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं, जो इसी अवस्था में अपना जीवन बिताते हैं और उन्हें ही हम महात्मा कहते हैं। महात्मा वही है, जो उस उच्च अवस्था में हमेशा अपने को मस्त रखे, तल्लीन रखे।

जब हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी गंगा पार करके आनंद कुटीर पहुँचे और अगले दिन जब टेहरी महाराज गंगा स्नान के लिए आए तो एक ही दर्शन में कैसे प्रभावित हो गए? इसलिए कि जो व्यक्ति उस परम तत्त्व में हमेशा रमण करता है, वह आप और हम जैसे कभी नहीं रहता, बल्कि उसके स्वरूप में दिव्यता, प्रकाश, शांति और आनंद की झलक प्रकट होती है। एक सामान्य व्यक्ति उसी को देखकर आकर्षित होता है, जैसे टेहरी महाराज ने पाँच मिनट स्वामी शिवानंद जी को देखा और उनके हो गए। उन्होंने अपने जीवन में अनेकों साधुओं और महात्माओं को देखा होगा, उनके साथ सत्संग किया होगा, लेकिन जब उन्होंने स्वामी शिवानंद जी पर दृष्टि डाली, तो जो आकर्षण उनके प्रति उत्पन्न हुआ उसके कारण आज वहाँ पर दिव्य जीवन संघ स्थापित है। क्या ऐसा आपके साथ हो सकता है? आजमाकर देख लो। बहुत-से साधु लोग भटकते रहते हैं चेले की खोज में, पर कोई उनकी ओर आकर्षित नहीं होता, क्योंकि वे उस तत्त्व से बहुत दूर हैं, लेकिन जो उस तत्त्व से जुड़ा है, वह अगर जंगल में रहे तो भी आपको खींचकर अपने पास ले आता है, यह है उनकी महिमा। परमतत्त्व में जो सदा रमण करता है उसे ही महात्मा कहते हैं और कुछ ही लोग इस अवस्था को प्राप्त करते हैं। जो इस अवस्था को प्राप्त करते हैं, वे इस अवस्था से कभी अपने आपको बाहर निकालने का विचार भी नहीं करते, बल्कि उनके सभी आचरणों, व्यवहारों और कर्मों में उस परम अवस्था की छवि ही दिखलाई देती है।

महात्माओं की लीला

एक उदाहरण देता हूँ। आदिगुरु शंकराचार्य ने अद्वैत वेदांत की चर्चा की, पर लोग समझे नहीं। तब उनको एक लीला रचनी पड़ी। कौन-सी लीला? वाराणसी के घाट पर एक शव और उसके बगल में क्रंदन करती हुई महिला। शंकराचार्य अपने शिष्यों के साथ स्नान करने जा रहे थे, बीच में शव था। शंकराचार्य जी कहते हैं, 'शव को हटाओ।' जरा सोचिये, जिसने अपने जीवन में अद्वैत अवस्था को प्राप्त किया है, क्या वह शव को देखकर ऐसा कहेगा?

लेकिन उन्होंने कहा, क्योंकि उनके शिष्य उस प्रकार की अवस्था में नहीं थे। वे केवल अनुयायी थे, उनके सेवक और सहायक थे। उनको आखिर कैसे सिखलाएँ। वे लोग इसे दर्शन के रूप में समझ रहे थे कि हमारे गुरुजी बहुत अच्छी-अच्छी बात करते हैं, लेकिन व्यवहार में नहीं देख पा रहे थे। इसलिए आदिगुरु शंकराचार्य को यह लीला रचनी पड़ी। जब वे कहते हैं, 'शव को हटाओ' तो महिला कहती है, 'बिना शक्ति के शव कैसे हटेगा?'

अब देखिये, आदिगुरु शंकराचार्य जब सौंदर्यलहरी की रचना करते हैं, तो उसमें जो पहला मंत्र आता है – *शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्* – इसका मतलब ही होता है कि शिव और शक्ति एक-दूसरे से अभिन्न हैं और जब शक्ति शिव से अलग होती है तो शिव शव हो जाते हैं, जड़ हो जाते हैं, निष्क्रिय हो जाते हैं। यह लीला उनको अपने अनुयायियों को समझाने के लिए करनी पड़ी कि देखो, शक्ति के बिना शिव मात्र शव हैं, और जब शक्ति है तो शव शिव होता है, जड़ में चैतन्यता आती है। हम जड़ हैं, हम चैतन्य नहीं हैं। भौतिक रूप से हम भले ही जगे हुये हैं, लेकिन आध्यात्मिक रूप से हम जड़ हैं। तो हमारे आध्यात्मिक स्वरूप में चैतन्यता को कैसे लाया जाए? शक्ति के द्वारा। शिव और शक्ति के एकत्व को अपने भीतर अनुभव करना, यह अद्वैत वेदांत का लक्ष्य है। जो उस परमतत्त्व में हमेशा रमण करता है, उसके व्यवहार, आचरण और कर्म कभी सांसारिक नहीं होते हैं।

एक बार अपने शिष्यों को समझाने के लिये स्वामी शिवानंद जी को भी लीला करनी पड़ी। ऋषिकेश क्षेत्र में वे किसी के यहाँ सत्संग के लिए गए थे। सत्संग देकर वे बाहर आ गए और चलने लगे। जिस घर में सत्संग दिये थे, उस घर की महिला उनको प्रणाम करती है, लेकिन स्वामी शिवानंद जी ने उसकी ओर नहीं देखा। कुछ दूर जाने के बाद वे फिर वापस मुड़ गए। उनके अनुयायियों को आश्चर्य हुआ कि सत्संग तो हो गया, फिर ये वापस क्यों मुड़े? स्वामी शिवानंद जी वापस आते हैं उस महिला के पास, उसको साष्टांग दंडवत् नमन करते हैं और कहते हैं, 'माता, आपने मुझे नमस्कार किया था, पर मैंने अपने अहंकार के कारण आपके उस अभिवादन को देखा नहीं, स्वीकार नहीं किया। मुझे स्मरण आया, इसलिए मैं आया हूँ।' अब जो उस परमतत्त्व में रमण करता है, क्या वह हमेशा द्रष्टा नहीं होगा? या क्या दस मिनट के बाद द्रष्टा बना अपने कर्मों का? नहीं। वे तो अपने शिष्यों को बतला रहे थे कि अगर तुम साधु जीवन में आगे बढ़ना चाहते हो तो हमेशा अपने

कर्मों के साक्षी बनकर रहो, हमेशा अपने व्यवहार का निरीक्षण करो, परीक्षण करो। यह उनकी शिक्षा थी। उनमें कमी नहीं थी, लेकिन अपने अनुयायियों को समझाने के लिए उनको ऐसा करना पड़ा।

जिस वेदांत की चर्चा आदिगुरु शंकराचार्य ने की, उस वेदांत की अवस्था में स्वामी शिवानंद जी रमे हुये थे, और इसलिए उनके जीवन-चरित्र में सेवा, धर्म, विश्व-प्रेम, वैराग्य, तप, योग, ध्यान, आत्मविचार, सकारात्मक चिंतन, संतुलित जीवन, श्रद्धा और भक्ति स्वतः अभिव्यक्त होते थे। यह था उनका व्यक्तित्व। हमलोगों को अच्छा बनने के लिए प्रयास करना पड़ता है, लेकिन जो अच्छा है, उसको कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, अच्छाई उनके जीवन में स्वतः प्रकट होती है। यह था हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी का जीवन –

परमतत्त्व में सदा रमण करना और उसी प्रकार का व्यवहार होना, उसी प्रकार का विचार होना, उसी प्रकार का कर्म होना।

उन्होंने अपनी आत्मकथा भी लिखी, जिसमें वे बतलाते हैं कि मैं क्या करता हूँ, कैसे करता हूँ। एकदम निश्छल भाव से उन्होंने यह सब बताया है, किसी को पटाने के लिए नहीं, किसी को छलने के लिए नहीं, बल्कि अपने सहज स्वभाव का उन्होंने वर्णन किया है। आप सोच सकते हो कि यह तो बहुत घमंडी होंगे जो अपने स्वभाव का वर्णन कर रहे हैं, लेकिन असली बात तो यह है कि कोई उनके स्वभाव की थाह नहीं ले सकता था, इसलिए उनको खुद लिखना पड़ा। श्रीकृष्ण को भी गीता में कहना पड़ा कि नक्षत्रों में मैं यह हूँ, पर्वतों में मैं यह हूँ। क्या वह कृष्ण जी का अभिमान था? कोई उन्हें समझ नहीं पाता था तो उनको कहना पड़ा कि देखो, मैं अपने व्यापक रूप में यह सब हूँ। लाखों की संख्या में सेना खड़ी थी, त्यागी, तपस्वी, महात्मा, गुरुजन खड़े थे, कोई उस विश्वरूप को नहीं देख पाया, केवल एक ने ही देखा, जो उनका शिष्य अर्जुन था। भीष्म नहीं देख पाये, द्रोणाचार्य नहीं देख पाये, कृपाचार्य नहीं देख पाये, यहाँ तक कि युधिष्ठिर भी नहीं देख पाये, जिसने देखा वह केवल एक व्यक्ति था। इसलिए जब कृष्ण जी कहते हैं कि मैं ऋतुओं में वसन्त हूँ, नदियों में गंगा हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ, तो इसका यह मतलब नहीं कि कृष्ण जी को अपने ऊपर अभिमान था, बल्कि वे अपने उस परम स्वरूप की व्याख्या कर रहे थे, जिसको केवल एक ही व्यक्ति समझ पा रहा था। आप भी तो गीता पढ़ते हो, कभी समझ पाये हो? नहीं समझे हो आज तक, क्योंकि आप अर्जुन नहीं हो। आपमें उस प्रकार की श्रद्धा, भक्ति, विश्वास या सामर्थ्य नहीं कि उस तत्त्व को जान पाओ, आत्मसात् कर पाओ।

इसी प्रकार स्वामी शिवानंद जी ने भी अपने स्वरूप का वर्णन किया कि मैं ऐसा करता हूँ, मैं वैसा करता हूँ। अवसर मिले तो पढ़ लेना, पर उनकी दिनचर्या के एक दिन का भी अनुसरण हमलोग नहीं कर पायेंगे। मैं इतने बजे उठता हूँ, उसके बाद यह करता हूँ, पूरे दिनभर की चर्या वे बतलाते हैं। अगर उसमें से पाँच चीजें भी आप कर पाओ तो आप महान् हो जाओगे, लेकिन उन्होंने एक दिशा प्रदान की, एक उदाहरण प्रस्तुत किया कि अगर चाहो तो ऐसा जीवन जी सकते हो। उनको मालूम था कि आने वाले समय में लोग अपने से बहुत दूर जाने वाले हैं, अध्यात्म से विलग होने वाले हैं। इसका संकेत भी उन्होंने दिया, कहा कि देखो, दिव्य जीवन क्या है, तुम उसे अच्छे से समझो।

दिव्य जीवन भगवद्-आश्रित जीवन नहीं है कि पड़े हैं और सोच रहे हैं कि अब भगवान ही हमारा ख्याल करेंगे। स्वामी शिवानंद जी ने कभी ऐसा नहीं सोचा। वे हमेशा कर्म में रत रहे, लेकिन उनके कर्म का स्वरूप निष्काम और अपेक्षाहीन था। उनका केवल एक ही उद्देश्य था, परोपकार।

निष्काम भाव

नदी में पानी सबके लिए है, उसमें गंदगी डालो या उस जल को ग्रहण करो, वह आपके ऊपर है, लेकिन नदी कभी यह नहीं सोचती कि यह आदमी मुझे गंदा कर रहा है और यह आदमी मुझे पी रहा है। सभी को समान रूप से जल प्रदान करती है। पेड़ पर फल लगते हैं, लेकिन पेड़ उन फलों को अपने लिए नहीं खाता है। स्वादिष्ट और मधुर फलों का आनंद दूसरे लोग उठाते हैं, पेड़ नहीं। उसका केवल एक ही काम है – मधुर और स्वादिष्ट फल उत्पन्न करना। वह अपने लिए नहीं सोचता, लोग उसको काट भी दें तो भी फल अच्छा आता है। गाय क्या करती है? वैसे आप कहते हो कि गाय हमारी माता है, लेकिन उसे क्या खिलाते हो? प्लास्टिक? उसे डंडा मारते हो न? आपलोगों में यह ताकत नहीं कि गाय को एक रोटी रोज खिला सकें और कहते हो मेरी माता, कैसी विडम्बना है? बदले में गाय क्या देती है? कभी जहर देती है क्या? नहीं, हमेशा अमृतरूपी दूध देती है, जिसको आप सब पीते हो, लेकिन गाय का सम्मान नहीं कर पाते हो, चारा नहीं दे पाते हो, रोटी नहीं दे पाते हो। बेचारी को सड़े पत्ते और प्लास्टिक खाना पड़ता है। सब प्रकार की पीड़ा को सहन करके भी आपको दूध देती है जिससे आपको बल मिलता है। यह होता है निष्काम भाव।

सकाम भाव और निष्काम भाव में बहुत अंतर होता है। जो निष्काम भाव से जुड़ा रहता है, वह महान् होता है और जो सकाम भाव से जुड़ा होता है, वह हमेशा स्वार्थी होता है, केवल अपने सुख का ही चिंतन करता है और अपने लिए ही संग्रह करना चाहता है, दूसरों को देने के लिए कुछ नहीं है उसके पास। जबकि निष्काम व्यक्ति प्रयत्न करता है कि मेरे लिए भले ही कुछ न रहे, लेकिन दूसरे के लिए सब कुछ हो जाय। यही अंतर होता है सकाम और निष्काम सेवक में। स्वामी शिवानंद जी यह बात जानते थे कि आने वाले समय में मनुष्य अपने आपको और ज्यादा दुःखी पाएगा, क्योंकि वह स्वार्थ में और अधिक लिप्त होते जाएगा, अपने जीवन की दिव्यता से दूर होते जाएगा। उनके जीवन से अगर कोई प्रेरणा ले तो बहुत अच्छी बात,

लेकिन समाज के लिय उन्होंने सरल निर्देश दिया, जिसे हमलोग शिवानंद जी का अष्टांग योग कहते हैं।

स्वामी शिवानन्द जी का अष्टांग योग

इस अष्टांग योग का प्रथम अंग है सेवा, जिससे मनुष्य अपने जीवन को उत्तम और दिव्य बना सकता है। दूसरा अंग है प्रेम, तीसरा अंग है दान, चौथा अंग है आंतरिक शुद्धता, पाँचवाँ अंग है, अच्छा बनो, छठवाँ अंग है, अच्छा करो, सातवाँ अंग है, मन को एकाग्र करो और आठवाँ अंग है, साक्षात्कार करो। ये आठ अंग वास्तव में जीवन के व्यावहारिक दर्शन की ओर संकेत कर रहे हैं। महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग अपने से जुड़ा है, 'मैं' करता हूँ, मैं आसन-प्राणायाम करना चाहता हूँ, 'मैं' ध्यान करना चाहता हूँ, 'मैं' समाधि का अनुभव करना चाहता हूँ। 'मैं, मैं, मैं', सब कुछ अपने से, अपने उत्थान की इच्छा से जुड़ा है। हमारे गुरुदेव कहते हैं कि जहाँ पर पतंजलि का योग समाप्त होता है, वहाँ से शिवानंद जी का योग आरंभ होता है। पहले बात समझ में नहीं आती थी, लेकिन बाद में बात समझ में आयी।

मान लीजिये हमने जिंदगीभर योग का अभ्यास करके समाधि का अनुभव किया और हमें भगवान का दर्शन हुआ। तो भगवान क्या मेरी पीठ थपथपायेंगे, क्या मुझे अपनी गोदी में बैठायेंगे? नहीं, भगवान कहेंगे, 'बेटा, थोड़ा समय और रुको, क्योंकि अभी तक तुमने जो किया, वह अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए किया। अब जाओ वापस और निःस्वार्थ भाव से रहो, अपने आपको शुद्ध बनाओ। जब अपने आपको शुद्ध बनाओगे तो सकाम भाव से मुक्त हो पाओगे और उसके बाद मेरे पास आना।' तो फिर हम भगवान के यहाँ से वापस आते हैं और आगे बढ़ने के लिए स्वामी शिवानंद जी का योग अपनाते हैं, जिसमें निष्काम भाव से सबकी सेवा हो, निष्काम भाव से सबसे प्रेम हो। इसके ज्वलंत उदाहरण वे स्वयं थे। निष्काम भाव से संग्रह नहीं, बल्कि देना सीखो, अपनी जेब थोड़ी हल्की करो, क्योंकि अगर तुम दूसरों के जीवन में थोड़ी प्रसन्नता ला सकते हो, तो उससे बढ़िया वरदान और चमत्कार अपने जीवन में कभी नहीं देख पाओगे।

दूसरों के जीवन में प्रसन्नता लाना, दूसरों के जीवन में अभाव को कम करना, यह इस दुनिया का सबसे बड़ा चमत्कार है, जो दान से ही संभव हो पाता है। यह मनुष्यों का धर्म और कर्तव्य है। यह बात सिर्फ मैं नहीं कह रहा

हूँ, आदिकाल में ईश्वर ने इस बात को कहा है। उपनिषदों में कहानी आती है कि देवता, दानव और मनुष्य, संसार में ये तीन जातियाँ थीं। सबका रहने का तरीका अलग-अलग था। कुछ समय बाद ये लोग अपने एकरस जीवन से ऊब गए तो अपने एक-एक प्रतिनिधि को भगवान के पास भेजते हैं कि जाओ, पूछो भगवान से कि हमारे जीवन का उद्देश्य क्या होना चाहिए, जिसके लिए हमलोग काम कर सकें।

तीन प्रतिनिधि चलते हैं ईश्वर से मिलने के लिए। भगवान का निवास बहुत दूर था। वहाँ न विमान जाता है, न रथ जाता है, न हाथी जाता है, न घोड़ा जाता है, पैदल ही जाना पड़ता है। जब ये लोग पैदल चल रहे थे तो समय बीता, बारिश के दिन आए। एक दिन भीषण, भयंकर गर्जना के साथ वर्षा और बिजली गिरी और ये तीनों प्रतिनिधि एक गुफा में भाग गए। गुफा में बैठे थे, बाहर में कड़कड़ाती हुई ध्वनि हो रही थी। बादलों की गर्जना को इनलोगों ने सुना और कहा कि इस बादल की गर्जना में भगवान ने हमको अपना संदेश भेज दिया है, अब वापस चलते हैं। कुछ समय बाद अपने-अपने समाज में वापस आ गए।

देवताओं ने अपने प्रतिनिधि से पूछा कि क्या संदेश लाये हो? उनके प्रतिनिधि ने कहा कि ईश्वर का संदेश है *'दमध्वम्, दमध्वम, दमध्वम्'*। बादलों की गर्जना में यही शब्द हमें सुनाई पड़ा। इसका मतलब होता है, 'दमन करो, दमन करो, दमन करो'। किस चीज का दमन करो? अपनी भोगवृत्ति का। देवताओं का स्वर्ग में यही मुख्य लक्षण है। आखिर जो भी आदमी मरता है, स्वर्ग ही जाना चाहता है क्योंकि वहाँ पर भोग-विलास और ऐशो-आराम की जिंदगी है। स्वर्ग भोग-वृत्ति का क्षेत्र है, इसलिए देवताओं को कहा गया कि भोग-विलास की वृत्ति का दमन करो।

दानवों के प्रतिनिधि से पूछा गया तो वह कहता है कि मैंने भी आवाज सुनी – *'दयध्वम्, दयध्वम् दयध्वम्'* जिसका अर्थ होता है, 'दया करो, दया करो, दया करो'। दानवों की वृत्ति क्या है? आतंकवादी वृत्ति है, क्रूर और हिंसक वृत्ति है। लोगों को परेशान करने में, कष्ट देने में उनको जिस सुख की प्राप्ति होती है, शायद देवताओं को अप्सराओं के नृत्य देखने में भी नहीं होती। इसलिए दानवों से कहा गया कि दूसरों के जीवन में दुःख के आँसू लाने के बजाय थोड़ी दया भी करो। दानवों के लिए यह संदेश मिला।

मनुष्यों के प्रतिनिधि से जब संदेश के बारे में पूछा गया तो वह कहता है – *'दनध्वम्, दनध्वम् दनध्वम्'*, 'देना सीखो, देना सीखो, दिया करो', क्योंकि

मानव की संग्रहकारी प्रवृत्ति है। जितना आपको मिले, उतना आप खुश होते हो। जहाँ पर जो जितना आपको दे, बार-बार आप उसी के पास जाओगे। यह स्वार्थ से जुड़ी प्रवृत्ति है जो मनुष्य के जीवन में संकीर्णता लाती है, जीवन की व्यापकता को अपने स्वार्थ, महत्त्वाकांक्षाओं और वासनाओं के भीतर समेट देती है। इसलिए देना शुरू करो। दान के साथ अपने आप दया भी आती है, क्योंकि जब दान एक प्रवृत्ति बनती है तो दया उसकी परिणति होती है।

सेवा, प्रेम और दान से फिर आत्म-शुद्धि की स्थिति आती है। आत्म-शुद्धि की स्थिति से क्या होता है? तुम अच्छा बनते हो। अब धीरे-धीरे जिस स्वार्थ की संकीर्णता ने हमको घेरकर रखा था, उससे हम अपने आपको मुक्त करते हैं। जब उससे मुक्त होते हैं तो आचरण भी अच्छा होने लगता है, हम अच्छा करने लगते हैं। उसके बाद जब आप ध्यान लगाते हो, तो फिर अपने मन के साथ संघर्ष नहीं करना पड़ता क्योंकि वह निर्मल, शांत और पवित्र हो चुका है। उसमें कोई विकार या मल नहीं है, वह शांत हो गया है। ध्यान लगता है उस परमतत्त्व में और जैसे-जैसे उस परमतत्त्व में ध्यान स्वतः लगने लगता है, उसका साक्षात्कार हमको हो जाता है – *सीयराममय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी*। ये मात्र एक चौपाई के शब्द नहीं रहते, बल्कि यह जीवन की एक सहज अभिव्यक्ति हो जाती है। ये योग के आठ अंग हैं, जिनकी शिक्षा स्वामी शिवानंद जी ने हमलोगों को अपने जीवन के कल्याण के लिए दी है।

– 16 अगस्त 2024, पादुका दर्शन

गुरु तत्त्व

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

कई लोग अपने गुरु से प्रेम तो करते ही हैं, साथ ही ईसा मसीह या किसी अन्य महापुरुष से भी प्रेम करते हैं। उनके मन में कभी विरोधाभास भी उठता है कि यथार्थ में कौन उनके गुरु हैं। यह विरोधाभास केवल इसलिए है कि वे सदैव द्वैत-अवस्था में रहते हैं। वे केवल शारीरिक रूप को देखते हैं। यथार्थ में गुरु कोई शरीरधारी मनुष्य नहीं, बल्कि एक मौलिक तत्त्व हैं जिसे गुरु तत्त्व भी कहते हैं। जिस तरह पंच तत्त्व होते हैं जिनसे आप सभी का निर्माण हुआ है, उसी तरह गुरु तत्त्व भी एक तत्त्व होता है। आपके भीतर अनेक सूक्ष्मतर और उच्चतर तत्त्व हैं, जिन्हें आप अभी नहीं जानते क्योंकि आप में उन तत्त्वों का बोध करने की क्षमता नहीं है। गुरु तत्त्व भी वास्तव में आपके भीतर विराजमान है।

ज्ञान

आज्ञा चक्र वह स्थान है जहाँ यह गुरु तत्त्व अभिव्यक्त होता है। यह ज्ञान के उन्मुक्त, निर्बाध प्रवाह को दर्शाता है। आपको किताबें पढ़ने की आवश्यकता नहीं, न ही किसी विश्वविद्यालय या ग्रन्थालय में जाने की जरूरत है। ज्ञान सदैव आपके चारों ओर प्रवाहित हो रहा है। अभी आप इसे आत्मसात् नहीं

कर सकते, क्योंकि आप में पर्याप्त ग्रहणशीलता नहीं है। यदि आपके भीतर गुरु तत्त्व जागृत है, तो यह ज्ञान आपको स्वतः उपलब्ध हो जाएगा। तब आप काल के तीनों आयाम – भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान जान सकेंगे। आपको इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, इत्यादि की जानकारी स्वतः प्राप्त हो जाएगी हालाँकि यह सब बहुत ही साधारण स्तर की जानकारी है।

स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामी सत्यानन्द जी को केवल पाँच मिनट में क्रिया योग की शिक्षा दी। स्वामी निरंजनानन्द कभी विद्यालय नहीं गए, परन्तु यदि आप उनसे वार्त्तालाप करें तो आपको इस बात का आभास तक नहीं होगा। इसी को हम गुरु तत्त्व कहते हैं। यह तत्त्व भौतिक नहीं है। जो भी इसे जागृत कर लेता है वह गुरु है। गुरु कोई उपाधि या प्रमाणपत्र नहीं। केवल चाहने से कोई गुरु नहीं बन जाता। नियति द्वारा नियुक्त किए जाने पर ही आप गुरु बन सकते हैं। आपके भीतर ज्ञान प्रवाहित होने लगता है क्योंकि आप भीतर से खाली हो जाते हैं। खाली होने पर ही आप उच्चतर ज्ञान के सशक्त माध्यम बन सकते हैं।

जब स्वामी सत्यानन्द जी ऋषिकेश में थे, तब वे दिनभर बैठकर वेद, उपनिषद् या गीता का पाठ नहीं किया करते थे। वे सदैव कर्मयोग में संलग्न रहते थे, जैसे हम सभी यहाँ आश्रम में रहते हैं – सफाई करना, पानी भरना, झाड़ू लगाना, अतिथियों से मिलना वगैरह। आज उन्हें वेदों-उपनिषदों का पूर्ण ज्ञान है, समस्त शास्त्र उन्हें कण्ठस्थ हैं। उनके समर्पण, निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास और गुरु-सेवा की वजह से उनमें गुरु तत्त्व जागृत हुआ। यह उनकी नियति थी, जिसकी वजह से यह ज्ञान उन्हें उपलब्ध हुआ।

शरीरधारी गुरु

यह आपके साथ भी घटित हो सकता है क्योंकि गुरु तत्त्व आपके भीतर भी है। इसलिए जब आप पूछते हैं, 'क्या ईसा मसीह मेरे गुरु हैं या फिर स्वामी निरंजन?' इसके जवाब में मैं यही कहूँगी कि दोनों आपके गुरु हैं। ईसा मसीह उस पवित्र आत्मा के प्रतीक हैं, जो आपके भीतर है, और स्वामी निरंजन वह व्यक्ति हैं जिनसे आप वार्त्तालाप कर सकते हैं, विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। आखिर गुरु का शारीरिक स्वरूप भी आवश्यक है, ताकि आप प्रश्न पूछ कर अपनी समस्याओं का समाधान कर सकें। आप अभी उस अवस्था तक नहीं पहुँचे हैं जहाँ आप बैठे-बैठे यह पता लगा सकें कि क्या सही है और क्या गलत। आपने उस मानसिक अवस्था को अभी प्राप्त नहीं किया है।

इसलिए आपको सब कुछ गुरु के मुख से सुनना होगा। आपके मन में कई ऐसे प्रश्न उठते हैं जिनका समाधान गुरु ही कर सकते हैं।

अगर हमें गुरु से पूछने की आवश्यकता ही न पड़े, तो और भी अच्छा। उस स्तर तक पहुँचना हमारे लिए कहीं अधिक बेहतर होगा, परन्तु कई बार हम कल्पनाएँ करने लगते हैं। हमें लगता है कि गुरु ने हमें कुछ संकेत दिया है, और हम हवाई किले बनाने लग जाते हैं। इसलिए भौतिक स्तर पर एक ऐसा व्यक्ति अवश्य उपलब्ध होना चाहिए, जो इन शंकाओं और समस्याओं का समाधान कर सके।

गुरुओं की एकात्मकता

कई बार लोग हमसे कहते हैं, 'हमने स्वामी सत्यानन्द जी से दीक्षा ग्रहण की है, पर अब हम उनसे न मिल सकते हैं, न ही कुछ पूछ सकते हैं। तो फिर हमारे गुरु कौन हैं, स्वामी शिवानन्द या स्वामी सत्यानन्द या स्वामी निरंजनानन्द?' इस प्रकार की भ्रान्ति निराधार है क्योंकि देखा जाए तो सभी गुरु एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। वे शारीरिक रूप से बेशक अलग दिखते हैं, परन्तु आध्यात्मिक स्तर पर वे एक होते हैं। इस ऐक्य के कारण उनके बीच आध्यात्मिक ऊर्जा का सम्प्रेषण होता है, जिसे हम समझ नहीं सकते क्योंकि हमने कभी इसका अनुभव नहीं किया है। हम हर चीज को बुद्धि द्वारा ही समझते हैं। किसी चीज को तभी समझ पाते हैं जब उसे शब्दों के रूप में सुनते हें। लेकिन जब आध्यात्मिक शक्ति का सम्प्रेषण होता है, तब शब्दों की आवश्यकता नहीं रहती। कोई चीज हमारी ओर सम्प्रेषित होती है और हम उसे स्वतः आत्मसात् कर लेते हैं। गुरु के इस सम्प्रेषण के माध्यम से हर प्रकार का ज्ञान हमें उपलब्ध हो सकता है, चाहे वह ईसा मसीह से आये, या राम, कृष्ण अथवा स्वामी

सत्यानन्द से। बस हमें उस व्यक्ति पर पूरा विश्वास होना चाहिए जिसे हमने अपना गुरु मान लिया है।

संशय का त्याग

अगर विश्वास के बजाय हमारे अन्दर संशय और शंका है तो बेहतर होगा कि हम गुरु न ही बनायें। एक बार आपने किसी व्यक्ति को गुरु मान लिया तो वहाँ संशय का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। गुरु एक पवित्र, अलौकिक तत्त्व है। वे मात्र शिक्षक नहीं, बल्कि ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने चेतना की उच्च अवस्था को प्राप्त कर लिया है, जिससे वे आपके विषय में बहुत कुछ जान लेते हैं। गुरु के समक्ष जाना और उनसे कुछ पूछना आपकी अपनी आवश्यकता है। आप क्या सोच रहे हैं, इसे जानने में गुरु को कोई दिलचस्पी नहीं। अगर वे चाहें तो क्षणभर में जान सकते हैं। मान लो, आप लंदन, फ्रांस या इटली में कहीं हैं और किसी तकलीफ में हैं। आप अपने गुरु को याद कर रहे हैं, उनसे हार्दिक प्रार्थना कर रहे हैं। निश्चित रूप से गुरु आपकी प्रार्थना सुनेंगे। लेकिन आपको सदैव इस कथन पर संशय होगा और यही आपकी सबसे बड़ी समस्या है। यदि वे आपकी प्रार्थना नहीं सुन सकते तो वे कदापि गुरु नहीं हो सकते। जिस क्षण आप 'गुरु' शब्द का उच्चारण करते हैं, आपको यह तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि वे सब कुछ जानते हैं। इस जानकारी का माध्यम उनकी स्थूल चेतना नहीं, बल्कि चेतना की वह उच्च अवस्था है, जो सब कुछ स्वयमेव समझ लेती है।

स्वामी सत्यानन्द जी अक्सर कहा करते थे, 'मेरा आशीर्वाद चाहते हो तो मेरे पास अपनी परेशानियाँ मत लाया करो।' सांसारिक चेतना से नहीं, बल्कि चेतना की उच्च अवस्था से ही गुरुजन आशीर्वाद दिया करते हैं। अपने चेतन मन से वे भले ही यह न जानें कि आप क्या सोच रहे हैं, लेकिन उनकी उच्च चेतना सब कुछ जान, समझ और ग्रहण कर रही है। यह एक स्वतःसंचालित प्रक्रिया है।

दीक्षा का महत्त्व

जब आप अपनी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ करते हैं तब आपको सही दिशा का निर्धारण करना पड़ता है। आपकी चेतना को सही दिशा मिले, यही दीक्षा का प्रयोजन होता है। जब आप योगाभ्यास के लिए प्रेरित होते हैं और ध्यान के लिए मन को एकाग्र करते हैं, तब आपको अपने भीतर क्या दिखाई देता

है? अंधकार के अलावा कुछ भी नहीं। हो सकता है यदा-कदा आपको कोई विचार या दृश्य भी दिखाई देता हो। ऐसी स्थिति में आप अपनी चेतना को किस दिशा में ले जाएँगे? दीक्षा आपको केवल सही मार्ग ही नहीं दिखाती, उस मार्ग पर चलने की शक्ति भी प्रदान करती है।

जिस तरह जन्म, विवाह आदि के अवसर पर आप एक परम्परा का पालन करते हैं, उसी तरह दीक्षा की एक परम्परा, एक औपचारिक विधि होती है, जिसके द्वारा आपके भीतर समर्पण और प्रतिबद्धता की भावना जागती है। मंत्र तो बहुत होते हैं, आप चाहें तो औपचारिक दीक्षा की परवाह किये बगैर स्वयं अपने लिए एक मंत्र चुन लें। लेकिन इससे आप को वह प्रभाव और लाभ नहीं मिलेगा जो दीक्षा के संस्कार से प्राप्त होगा। दीक्षा संस्कार आपको एक दिशा, एक ऊर्जा प्रदान करता है जो आपके व्यक्तित्व के पूर्णतया अनुकूल होती है।

दीक्षा के माध्यम से आपके गुरु आपके भीतर ऊर्जा सम्प्रेषित करते हैं। जब आप साधना करते हैं तब यह ऊर्जा आपकी सहायता करती है। एक शिष्य और साधक होने के नाते आपका यह फर्ज बनता है कि आप इस ऊर्जा का संरक्षण करें, इसे विलुप्त न होने दें। जैसे-जैसे आप अपनी आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त होते जाएँगे, वैसे-वैसे इस ऊर्जा में वृद्धि होती जाएगी। लेकिन अगर आप लापरवाह रहते हैं तो आप इसे खो देंगे। ऐसे बहुत-से लोग हैं जो दीक्षा तो ले लेते हैं, लेकिन निर्दिष्ट साधना के प्रति लापरवाह होने के कारण गुरु द्वारा सम्प्रेषित ऊर्जा को खो देते हैं।

मंत्र

आध्यात्मिक जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण दीक्षा मंत्र की होती है। यदि आपके पास मंत्र है तो आपको अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। आध्यात्मिक जीवन में मंत्र एक अनिवार्यता है। यदि आपके पास यह है तो ऐसा मानिए कि चेतना के विकास के लिए आपके पास सारी आवश्यक सामग्री है।

मंत्र चेतना को गति प्रदान करता है। इस समय आपकी चेतना आपके घर, परिवार, समाज, काम-काज और विषय-भोगों में ही अटकी हुई है। जब आप अपनी चेतना को इस निम्न स्तर से उठाना चाहते हैं तब आपको मंत्र दिया जाता है जो आपकी चेतना को गर्त से निकालकर ऊर्ध्वगामी गति प्रदान करता है, ताकि आप सांसारिक अनुभवों के साथ-साथ एक नये आयाम के अनुभव भी प्राप्त कर सकें। यही दीक्षा का वास्तविक प्रयोजन है।

गीता में गुरु-भक्ति

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

भगवान श्रीकृष्ण को यद्यपि अपने ईश्वरत्व का पूर्ण ज्ञान एवं आभास था, फिर भी उन्होंने सामान्य शिष्य की तरह गुरु का वरण किया, उनके समीप अध्ययन किया और पूर्ण समर्पण के साथ उनकी सेवा की। श्रीकृष्ण की कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं था। उनके सभी कर्म और व्यवहार उनकी वाणी की ही व्याख्या करते थे। आइये, हम उनकी अमृत वाणी, श्रीमद् भगवद् गीता पर दृष्टि डालें और देखें कि गुरु और उनके प्रति शिष्य के भाव-बर्त्ताव के विषय में क्या कहा गया है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते – श्रीकृष्ण के अनुसार इस संसार में ज्ञान जैसा पवित्र और महान् तत्त्व कोई नहीं। अब प्रश्न उठता है कि इस ज्ञान को कैसे प्राप्त किया जाए? गीता में दो कथन इस महान् प्रश्न के उत्तर पर प्रकाश डालते हैं। प्रथम है – *श्रद्धावान् लभते ज्ञानं* – श्रद्धा से युक्त व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त करते हैं। श्रद्धा को पूर्णतया परिभाषित करना कठिन है। यह तो प्रेम, विश्वास, भक्ति, निरभिमानिता और पूर्ण आत्म-समर्पण का अद्भुत सम्मिश्रण है। दूसरा

भगवद् वाक्य है – *तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया, उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः* – जिन महान् ज्ञानियों ने परम तत्त्व का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर लिया है, उनके समक्ष दण्डवत् प्रणाम करने से, उनसे सारगर्भित प्रश्न पूछने से और उनकी सेवा करने से वे तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश देंगे।

उच्चतम ज्ञान केवल अपने पुरुषार्थ के बल पर अर्जित नहीं किया जा सकता। यह सत्य विश्वरूप-दर्शन योग के अध्याय में स्पष्ट रूप से उजागर हुआ है। अर्जुन को अपना विराट् स्वरूप दिखाकर भगवान कहते हैं कि 'जिस अद्भुत रूप को तुमने अभी देखा उसके दर्शन के लिए देवी-देवता तक लालायित रहते हैं। पर वे मुझे तत्त्वतः नहीं जानते क्योंकि मैं उन सभी का स्रोत हूँ। केवल अनन्य भक्ति से मैं जाना जा सकता हूँ।'

जब कोई अनन्य भक्ति से युक्त होता है तभी भगवान उसे अपना स्वरूप दिखलाते हैं, जैसे उन्होंने अर्जुन को दिखाया। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है – भगवान ही स्वयं को प्रकट करते हैं। अर्जुन को भगवान ने ही दिव्य-चक्षु दिए जिनसे वह उनके विराट् स्वरूप का दर्शन कर पाया। इसी तरह श्रीकृष्ण कहते हैं – *ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते*, अर्थात् जब साधक ज्ञान-प्राप्ति के योग्य हो जाता है तब मैं उसे बुद्धियोग देता हूँ जिसके माध्यम से वह मुझे प्राप्त कर लेता है। गीता के सबसे प्रबल उद्घोष – *सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः* में भी भगवान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मेरे प्रति हृदय से पूर्ण आत्मार्पण कर दो। तुम केवल इतना ही कर सकते हो। मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा। तुम स्वयं यह काम नहीं कर सकते, पर डरो नहीं, मैं यह कर दूँगा। 'तुम केवल श्रद्धा विकसित कर सकते हो, मैं तुम्हें ज्ञान दूँगा; तुम केवल समर्पण कर सकते हो, मैं तुम्हें मोक्ष दूँगा' – यह भगवान का अंतिम उद्घोष है।

गीता के इन श्लोकों से एक सुन्दर सत्य उजागर होता है। एक जगह भगवान कहते हैं, 'मैं साधक को बुद्धि-योग देता हूँ जिससे वह मुझ तक पहुँच पाता है' और अन्य स्थान पर वे कहते हैं, 'महान् ज्ञानियों अर्थात् गुरुजनों के पास जाओ, उन्हें प्रणाम करो, उनकी सेवा करो, उनसे प्रश्न पूछो, वे तुम्हें सर्वोच्च ज्ञान देंगे।' इन दो कथनों को एक साथ देखने पर एक महान् सत्य की झलक मिलती है – गुरु और कोई नहीं, पृथ्वी पर अवतरित साक्षात् भगवान हैं। आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति या तो भगवान के अव्यक्त, निराकार स्वरूप के प्रति अनन्य भक्ति विकसित करके हो सकती है या फिर उनके गुरु स्वरूपी

मूर्त, साकार रूप के माध्यम से, जिस पर तुम ध्यान कर सकते हो, जिसका नाम जप सकते हो, जिसके व्यक्तित्व को तुम देख, सुन और छू सकते हो, जो तुम्हें व्यक्तिगत रूप से आत्मज्ञान के पथ पर प्रेरित और निर्देशित कर सकता है। इस प्रकार भगवान ने गुरु के साथ अपना पूर्ण तादात्म्य सिद्ध किया है। साधक अपनी श्रद्धा और भक्ति या तो भगवान के निराकार स्वरूप के प्रति दिशान्तरित कर सकता है या फिर धरती पर उनके साकार स्वरूप, गुरु के

प्रति। अधिकांश लोगों के लिए दूसरा विकल्प निश्चित रूप से अधिक सुलभ और व्यावहारिक है।

गुरु-भक्ति और गुरु-सेवा की परिणति आत्म-साक्षात्कार में होती है। इसलिए अपने गुरु की सेवा और सत्कार निरंतर करते जाना है। जब सही समय आ जाएगा, जब तुम्हारा समर्पण पूर्ण हो जाएगा तब गुरु स्वयमेव सत्य से तुम्हारा साक्षात्कार कराएँगे। वह समय कब आएगा, इससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। अर्जुन ने विश्वरूप-दर्शन की प्रार्थना की और फिर भगवान से दिव्य-चक्षु मिलने की धैर्यतापूर्वक प्रतीक्षा की। इसी तरह तुम्हें बस सेवा, सेवा और सेवा करते रहना है। जब तुम परिपक्व और तैयार हो जाओगे तब गुरु तुम्हें अवश्य ज्ञान प्रदान करेंगे। अपरिपक्व और लापरवाह साधक कुछ वर्षों तक अपने गुरु की सेवा करते हैं, फिर यह सोचकर छोड़ देते हैं कि उनकी चित्त-शुद्धि हो गई है। ऐसे अभागे साधक परम ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते, वे अपने लक्ष्य से चूक जाते हैं। उन्हें कुछ पुण्य अवश्य मिलता है, लेकिन आत्म-साक्षात्कार नहीं। यह सचमुच एक बहुत बड़ी हानि, बहुत बड़ी गलती है।

गुरु-भक्ति और गुरु-सेवा दो पतवारें हैं साधना रूपी नौका की, जिनके सहारे तुम विषम संसार-सागर को पार कर जाओगे। जब तक तुम शाश्वत आनन्द और अमरत्व के तट पर नहीं पहुँच जाते, जब तक तुम जीवनमुक्त नहीं बन जाते तब तक वे तुम्हारे लिए अपरिहार्य हैं। आध्यात्मिक यात्रा के अंत में गुरु-भक्ति ही आत्मानुभूति के रूप में तुम्हारे भीतर प्रकट होती है और गुरु-सेवा लोकसंग्रह बन जाती है जिसमें तुम स्वाभाविक रूप से तल्लीन हो जाते हो।

जिस मनुष्य में इस प्रकार की गुरु-भक्ति है, जिसने गुरु के प्रति पूर्णरूपेण समर्पण कर दिया है, जो गुरु की तन-मन-धन से सेवा करता है, उसे कोई दुःख, कष्ट, भय या भ्रम नहीं सता सकता। वह शीघ्र ही भगवद्-साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है क्योंकि गुरु और भगवान एक ही हैं। उपनिषदों में भी कहा गया है – *यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ, तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः* – जिसकी भगवान में परम भक्ति है और वैसी ही भक्ति अपने गुरु में भी है, ऐसे महात्मा के हृदय में उपनिषदों के गूढ़ सत्य स्वतः प्रकाशित हो जाते हैं।

भगवान करे तुम सब गुरु-भक्ति के ज्वलन्त आदर्श बन जाओ और इसी जन्म में जीवनमुक्त बनकर वसुन्धरा पर विचरण करो!

गुरु-प्रेरणा में जीना

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक जीवन में गुरु और शिष्य के बीच बड़ा महत्त्वपूर्ण और निकट सम्बन्ध होता है। गुरु मात्र शिक्षक नहीं हैं। योग में गुरु का तात्पर्य अज्ञानरूपी अंधकार को ज्ञान द्वारा मिटाने वाले व्यक्ति से है। इसलिए गुरु को शिक्षक या प्रोफेसर समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।

ज्ञान प्राप्ति के दो माध्यम हैं। एक है बुद्धि के द्वारा और दूसरा अन्तर्प्रज्ञा के द्वारा। शिक्षक मात्र बौद्धिक ज्ञान दे सकते हैं, किन्तु उनके माध्यम से आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। जबकि गुरु इतना समर्थ होता है कि वह अपने

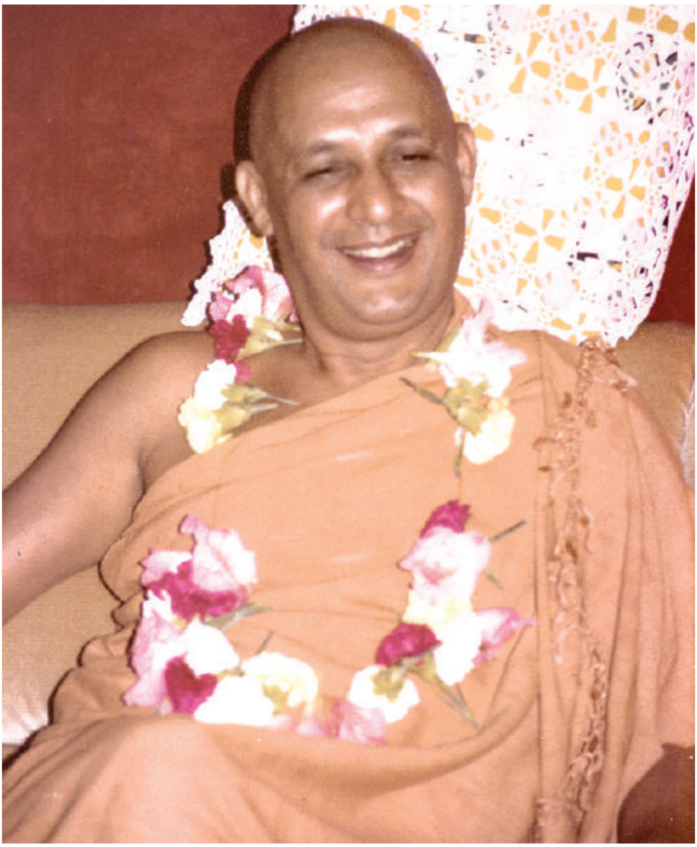

शिष्य को बौद्धिक ज्ञान और अन्तर्ज्ञान, दोनों प्रदान कर सकता है। शिष्य वह है जो सीखने के लिये उत्सुक हो। यदि आप गुरु के पास कुछ सीखने के उद्देश्य से जाते हैं, तो आप शिष्य कहलायेंगे।

चूँकि गुरु बौद्धिक ज्ञान प्रदान करने के साथ आत्म-साक्षात्कार करा सकते हैं, इसलिए शिष्य में भी बौद्धिक ज्ञान के साथ अन्तर्ज्ञान को आत्मसात् करने की क्षमता होनी चाहिए। यहाँ याद रखने वाली एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हर व्यक्ति शिष्य नहीं होता। अधिकतर लोग केवल बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें अन्तर्ज्ञान की समझ नहीं होती। उनकी चेतना और उनकी आत्मा भी आत्म-साक्षात्कार के अनुभव के लिए तैयार नहीं रहती।

गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध ठीक वैसा होता है जैसा बिजली और बल्ब का। गुरु आध्यात्मिक शक्ति है और शिष्य उस शक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम। यह आवश्यक है कि शिष्य अपनी चेतना को विकसित करे। समय आने पर उसके भीतर विकसित चेतना आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति में सहायक होगी।

गुरु और शिष्य वस्तुतः एक हैं, दो नहीं। शिष्य की चेतना गुरु से जुड़ी रहती है। इसे भक्ति कहते हैं। भक्ति के स्तर पर गुरु और शिष्य एक-दूसरे से संयुक्त रहते हैं। नियमित साधना से पवित्रता आती है, मन के विकार धुल जाते हैं तथा शिष्य अपने भीतर गुरु को देख सकता है।

एक शिष्य के लिए गुरु बाहर भी होता है और अन्दर भी। बाहरी गुरु उसकी भक्ति का एक पक्ष होता है और अन्दर का गुरु उसकी आध्यात्मिक साधना का अन्य पक्ष। जब शिष्य गुरु का ध्यान करता है तब उसका संपर्क अन्दर के गुरु से स्थापित होता है। इसलिए आध्यात्मिक जीवन में गुरु का महत्त्व निर्विवाद है। शिष्य को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसे साधना में और भी प्रगति करनी है। उसे आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति तभी हो सकती है जब उसकी साधना उच्च कोटि की हो।

जब झील का पानी निर्मल होता है तभी उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब झलकता है। ठीक उसी प्रकार जब शिष्य का हृदय निर्मल होगा तभी उसमें अपने गुरु की महिमा प्रतिबिम्बित होगी। संसार में तीन प्रकार के गहन सम्बन्ध होते हैं। सर्वोच्च सम्बन्ध मनुष्य और ईश्वर के बीच का होता है। यह सांसारिकता से सर्वथा परे होता है। माता और संतान, भाई और बहन, पति और पत्नी – इनके बीच का सम्बन्ध सांसारिक अनुभवों पर आधारित होता

है। परन्तु गुरु और शिष्य के सम्बन्ध में उपर्युक्त सभी सम्बन्धों का समावेश हो जाता है। गुरु-शिष्य सम्बन्ध सांसारिक अनुभवों से बना होता है और साथ ही सांसारिकता से परे भी होता है। एक स्तर पर वे पृथक् दिखते हैं, उनमें से एक ज्ञानी है तो दूसरा अज्ञानी, परन्तु सूक्ष्म स्तर पर उनमें एकत्व रहता है।

गुरु की महिमा और शिष्य की महानता का योग तथा तंत्र की साधना में बड़ा महत्त्व होता है। शिष्य तथा गुरु का दृष्टिकोण तथा उनका व्यवहार महत्त्वपूर्ण है। दोनों एक-दूसरे को पूर्ण रूप से स्वीकार करें और परस्पर अभिन्नता स्थापित करने का प्रयास करें। शिष्य या गुरु का अहंकार दोनों में कदापि निकटता नहीं आने देगा। गुरु के लिए शिष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है और शिष्य के लिए गुरु भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

जिस क्षण आप योग या तंत्र का अभ्यास प्रारंभ करते हैं, आप शिष्यत्व में प्रवेश करते हैं। यह सच है कि प्रारंभ में आप पुस्तकें पढ़कर अथवा लोगों से सुनकर योग या तंत्र का अभ्यास करते हैं, पर कुछ समय पश्चात् एक ऐसी स्थिति आती है जब गुरु तथा आप के बीच परस्पर सम्पर्क आवश्यक हो जाता है।

जब आप आध्यात्मिक पथ पर यात्रा प्रारंभ करते हैं तो आपमें प्रेरणा तथा उत्साह रहता है, क्योंकि यह यात्रा बाह्य स्तर से प्रारम्भ होती है, जिससे आप भली-भांति परिचित हैं। लेकिन जब आप इस मार्ग पर आगे बढ़ते हैं तो ऐसे स्तरों पर पहुँचते हैं जो आपके लिए अनजाने तथा अछूते होते हैं। यहाँ आपमें नितांत अकेलेपन का भाव उत्पन्न होता है तथा अनेक विस्मयकारी अनुभव होते हैं। यहाँ के दृश्य और अनुभव इतने आश्चर्यचकित कर देने वाले होते हैं कि आप समझ ही नहीं पायेंगे कि आप क्या देख रहे हैं।

ऐसे समय में जब आपके मन, मस्तिष्क, चेतना तथा अनुभव के क्षेत्रों में महान् रूपान्तरण होता है, आप किससे जाकर पूछेंगे, 'यह सब क्या है?' यदि आप भिन्न-भिन्न लोगों के सामने अपनी समस्या रखेंगे तो निश्चय ही आपको अलग-अलग उत्तर मिलेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि आपका मन भ्रमित हो जायेगा। जिन लोगों के समक्ष आप अपनी समस्या रखते हैं, वे न तो आपको जानते-समझते हैं और न ही आप उन्हें। फिर वे आपके अनुभव को कैसे समुचित ढंग से समझ पायेंगे? इसलिए आपको गुरु की आवश्यकता पड़ती है। आप उन्हें जानते हैं तथा वे आपको। आपका शरीर, मन तथा आत्मा सब उनके लिए परिचित होते हैं। इसलिए उनके द्वारा आपकी समस्या का समाधान अचूक और पूर्ण होगा।

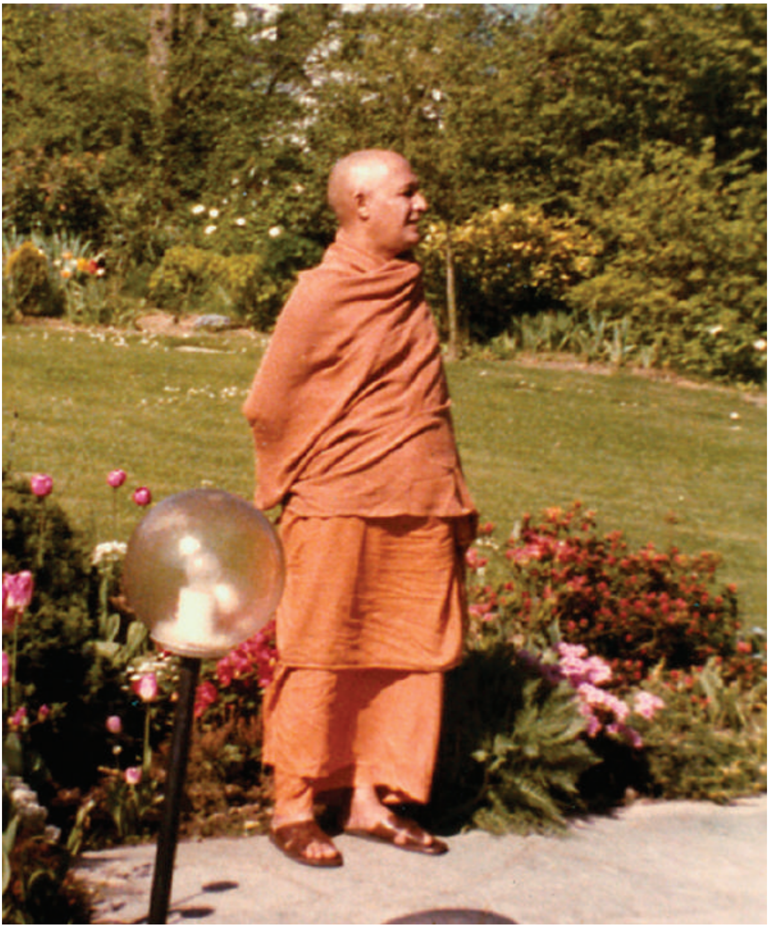

यह भी बहुत आवश्यक है कि गुरु जीवित हों। कभी-कभी अपने ही अज्ञान अथवा अहंकार के कारण लोग जीवित गुरु के प्रति अरुचि प्रकट करते हैं। इसी अहंकार के कारण वे किसी के समक्ष नतमस्तक होने में अपनी हेठी समझते हैं। देखा जाए तो यह हमारे जीवन की एक भारी विडम्बना है। क्या हम अपनी इन्द्रियों, वासनाओं तथा क्षणिक प्रलोभनों के प्रति समर्पण नहीं करते? लेकिन जब हमसे गुरु के पवित्र चरणों में समर्पण करने के लिए कहा जाता है, तब हमारा अहम् तथा व्यक्तित्व विद्रोह कर बैठता है।

मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ जो किसी परायी स्त्री पर जी-जान से आसक्त था तथा उसपर अपार धन खर्च करता था। उसके पीछे वह अपनी

पत्नी तथा बच्चों तक की परवाह नहीं करता था। एक बार वह मुझे ट्रेन में मिला। मैंने उससे गुरु सम्बन्धी चर्चा प्रारम्भ की। वह बोला, 'मेरा अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। फिर मैं कैसे अपने व्यक्तित्व का समर्पण कर दूँ?' चूँकि मैं उसके बारे में सब कुछ जानता था, मैंने उससे तत्काल पूछा, 'जब गुरु का सवाल आया तो तुम कहते हो तुम्हारा स्वतंत्र व्यक्तित्व है। परन्तु जहाँ तक उस महिला का प्रश्न है, यह व्यक्तित्व और अहम् कहाँ चला जाता है?'

ऐसा विरोधाभास हम सबके साथ जुड़ा है। जब हम गुरु की चर्चा करते हैं तो अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के विलोप हो जाने की संभावना से भयभीत हो उठते हैं, लेकिन इस जीवन के विस्तृत वीराने में खुद के गुम हो जाने से किंचित भयभीत नहीं हैं। मेरी राय में मनुष्य के जीवन में समर्पण के दो महत्त्वपूर्ण क्षण आते हैं। पहला वह जब हम अपनी वासनाओं, सनकों, प्रलोभनों आदि के समक्ष घुटने टेक देते हैं। इस प्रकार का समर्पण प्रायः हर व्यक्ति जाने-अनजाने करता रहता है। दूसरे प्रकार का समर्पण गुरु के प्रति होता है। पहले प्रकार के समर्पण के परिणामस्वरूप दुःख, पीड़ा, हताशा तथा निराशा मिलती है, जबकि दूसरे प्रकार के समर्पण का परिणाम आनन्दमय होता है। आप समझने लगते हैं कि अब आप अकेले नहीं है। कोई है जो आपका हितैषी एवं मंगलाकांक्षी है। उसकी अहैतुकी कृपा आपको सदैव मिलती रहेगी तथा वह आपसे भिन्न नहीं है।

शिष्य का यह अनुभव गुरु के प्रति उसके पूर्ण समर्पण का फल होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि शिष्य का गुरु के प्रति व्यवहार कैसा हो। मेरी दृष्टि में उसके व्यवहार का मात्र एक स्वरूप होना चाहिए – उसका हर विचार, वाणी और कर्म गुरु की पवित्र स्मृति एवं प्रेरणा द्वारा परिचालित होना चाहिए। आप जानते हैं न मोटरगाड़ी कैसे चलती है? जब आप उसके स्टीयरिंग को दायीं ओर घुमाते हैं, तो गाड़ी भी दाहिनी ओर मुड़ती है। जब उसे बायीं ओर घुमाते हैं तो गाड़ी भी बायीं ओर मुड़ती है। यदि इससे उलटा होने लगे तो बताइए आप क्या करेंगे? आप उसे मरम्मत के लिए तुरंत मेकैनिक के पास भेज देंगे। इसी तरह जब तक शिष्य गुरु के अनुकूल आचरण करता है, तब तक सब ठीक रहता है। परन्तु जैसे ही वह गुरु के विपरीत जाने लगता है, उसे भी मोटरगाड़ी की तरह मरम्मत की जरूरत पड़ती है। इसलिए आध्यात्मिक जीवन में गुरु अपरिहार्य है तथा यह शिष्य के अपने हित में है कि वह सत्यनिष्ठा के साथ गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करता रहे।

गुरु-शिष्य संबंध में प्रेरणा की भूमिका

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

एक संन्यासी के जीवन में समाधि की प्राप्ति जीवन की उपलब्धि है, क्योंकि उसी लिए तो व्यक्ति योग में आता है, साधु बनता है, संन्यास लेता है या ईश्वर के प्रति अपने आपको समर्पित करता है। लेकिन इस समाधि की स्थिति को प्राप्त करना तभी संभव है जब व्यक्ति अपने आपको तपाता है। अगर सोने को खदान से निकालकर बिना तपाये कह दिया जाय कि वह पूर्णरूपेण शुद्ध है, तो वह सही नहीं होगा। इसी प्रकार जब जीव संसार में आता है, तब दूध

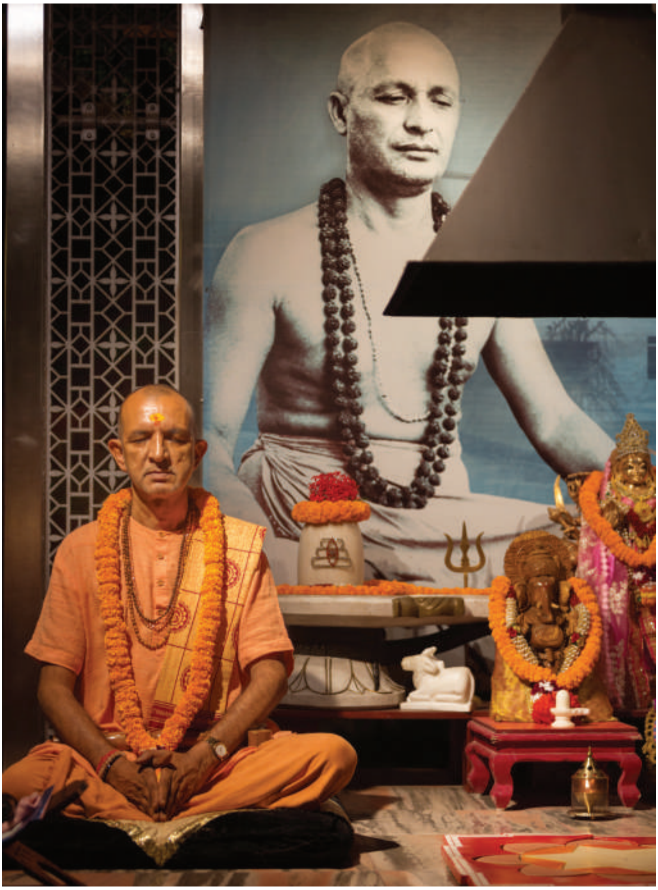

का धुला तो नहीं आता है, अपने संस्कारों, कर्मों, इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और प्रारब्ध के साथ आता है। उस कीचड़ से निकलकर उसे अपने जीवन में शुद्धता की प्राप्ति करनी होती है। कीचड़ से निकलने के प्रयास को कहते हैं साधना, और शुद्धता की प्राप्ति को कहते हैं ईश्वरत्व की अनुभूति।

संन्यासी के जीवन में जब साधना से ईश्वरत्व की अनुभूति संभव हो जाती है तब उसकी चेतना स्वार्थ के बजाय निःस्वार्थ भाव से जुड़ती है, सकाम भाव से न जुड़कर निष्काम भाव से जुड़ती है और सर्वव्यापी हो जाती है।

हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने अपने जीवन काल में वह सिद्ध कर दिया जिसे हम लोग केवल इतिहास के पन्नों में पढ़ते हैं। पूर्वकाल में हमारे ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी ध्यान लगाकर स्वेच्छा से अपने प्राणों को बाहर निकालते और अपने शरीर का त्याग करते थे। यह किताबों में पढ़ा था, लेकिन कभी देखा नहीं था। अभी तक यही देखा था कि बड़े-बड़े संन्यासी भी अस्पतालों में जाकर अपने शरीर का त्याग करते हैं।

पहली बार हमने अपने जीवन में यह देखा कि किस प्रकार एक संन्यासी ध्यान की अवस्था में, प्रार्थना करके, स्वयं मुँह में तुलसी दल डालकर और गंगा जल पीकर, मंत्र उच्चारण करते हुए अपने प्राणों को शरीर से निकालते हैं। इससे यह साबित होता है कि जो व्यक्ति वास्तव में पूर्ण निष्ठा के साथ इस मार्ग पर चलता है, उसको परमार्थ तत्त्व की अनुभूति निश्चित रूप से होती है। इस रूप में स्वामीजी का जीवन एक सामान्य मनुष्य से सिद्धत्व की ओर की यात्रा को दर्शाता है। वे एक सामान्य किसान के घर में जन्म लेकर, अपने संस्कार और प्रतिभा के बल पर अपने आपको स्वनिर्मित और स्वार्थ निर्मित इच्छाओं और वासनाओं से मुक्त कर, शुद्धता और प्रकाशत्व की चरम सीमा तक पहुँच पाये। यह निश्चित रूप से जीवन की एक श्रेष्ठ उपलब्धि है, और ऐसे व्यक्ति हैं हमारे गुरु।

गुरु कौन होता है? वास्तव में गुरु एक प्रेरणा है। शरीर तो केवल उस प्रेरणा को अपने जीवन में जाग्रत करने का माध्यम बनता है। जैसे शिक्षा को आत्मसात् कराने के लिये शिक्षक माध्यम बनता है, वैसे ही अपने जीवन में दिव्यता और उत्तमता के अनुभव को प्राप्त करने के लिये गुरु माध्यम बनता है। इस रूप में गुरु एक प्रेरणा हैं। लोग गुरु के साथ भौतिक, बौद्धिक, भावनात्मक रूप से सम्बन्ध जोड़ते हैं; लेकिन क्या यह भौतिक, बौद्धिक, भावनात्मक सम्बन्ध ही शिष्य और गुरु के सम्बन्ध को निश्चित करता है? नहीं।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध को निश्चित करती है प्रेरणा। जब गुरु प्रेरणा के रूप में एक शिष्य के जीवन में अवतरित होते हैं, और जीवन की अच्छाइयों की ऊँचाई को छूने के लिये प्रोत्साहित करते हैं, तब वास्तविक सम्बन्ध स्थापित होता है। उसके बाद यह कोई जरूरी नहीं कि चेला गुरु के साथ रहे। वह जहाँ भी रहे, गुरु के पास या उनसे दूर, सम्बन्ध दृढ़ और स्थायी होता है। और यही गुरु तत्त्व है।

जीवन में समाज के अतिरिक्त मनुष्य के छः जीवन-साथी हैं – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। ये छः साथी मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं, उसके व्यवहार और चिन्तन को निश्चित करते हैं। मन इन छः साथियों के संपर्क में आकर, अपनी स्पष्टता और ज्ञान खोकर, मनुष्य को अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये संलग्न कराता है। मनुष्य कर्म तथा धर्म में रत होकर भी अपनी इच्छाओं एवं वासनाओं की ही पूर्ति चाहता है। लेकिन संन्यासी कर्म और धर्म को माध्यम बनाकर, त्याग और आत्मभाव को अपना शस्त्र बना कर, मन के इन छः साथियों पर अपना वर्चस्व स्थापित करता है।

त्याग और आत्मभाव जरूरी हैं। संन्यासी के जीवन में संन्यास को सिद्ध करने के लिये ज्ञान की आवश्यकता नहीं, विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं, क्योंकि बहुत बार ज्ञान और विद्वत्ता मनुष्य के कर्मों को पाखण्ड की ओर ले जाते हैं। लेकिन त्याग और आत्मभाव की आवश्यकता है, ये दो गुण संन्यासी के शस्त्र होते हैं। जैसे गृहस्थ के शस्त्र होते हैं कर्म और धर्म, जिनका वह हमेशा उपयोग करता है, वैसे ही त्याग और आत्मभाव संन्यासी के शस्त्र होते हैं। जो अपने जीवन में इनको पूर्णरूपेण सिद्ध कर लेता है वह गुरु तत्त्व से अपने आपको जोड़ता है। उसके जीवन का प्रकाश दूसरे के जीवन को प्रकाशित करता है, एक उत्तम मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करता है। यही हमने अपने गुरुजी के जीवन में देखा है।

– 5 मार्च 2015, गंगा दर्शन

अविस्मरणीय अनुभूतियाँ

राँची तथा समीपवर्ती स्थानों से योगप्रेमियों के एक समूह ने 29 मार्च से 5 अप्रैल तक गंगा दर्शन में प्रवास किया। उनकी कुछ अनुभूतियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं –

यहाँ आकर मुझे अपने अंदर झाँकने और सही-गलत का एहसास करने का अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ की दिनचर्या से मेरा मन शांत हुआ, आत्म समझ बढ़ी, खासकर भक्ति योग में शामिल होकर गहरी शांति मिली। यहाँ का अनुशासन, सादा जीवन, सेवा का अनुभव, गुरु से मिली सीख, शांति व एकाग्रता, खुद में आया बदलाव, यह सब अनुभव मेरे लिए बहुत गहरे व महत्त्वपूर्ण रहे।

– गीतांजली, राँची

आश्रम में प्रवेश करते ही यहाँ का वातावरण बहुत शांत और प्राकृतिक लगा। हर दिन सुबह जल्दी उठकर हठयोग और ध्यान का अभ्यास करना होता था। इसके अलावा सेवा कार्य भी रहता था, जैसे सफाई, भोजन का कार्य आदि। शुरुआत में मुझे यह जीवन थोड़ा कठिन लगा, लेकिन धीरे-धीरे मुझे इसकी आदत हो गई और मुझे अन्दर से शान्ति महसूस होने लगी।

आश्रम में रहकर मैनें धैर्य, सादगी और आत्म-नियंत्रण सीखा। यह अनुभव मेरे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण रहा और इस अनुभव ने मेरी सोच को बदल दिया। बिना आधुनिक सुविधा के जीवन सुख और शांति से गुजारा जा सकता है। इस अनुभव ने मुझे सिखाया कि असली खुशी बाहरी चीजो में नहीं, बल्कि हमारे अन्दर होती है। अंत में कहना चाहूँगी कि आश्रम जीवन का अनुभव मेरे लिए बहुत लाभदायक रहा, और भविष्य में मैं फिर से आना चाहूँगी।

– सुप्रिया कुमारी, राँची

आश्रम प्रवास में जीवन से जुड़े अनेक पहलुओं को जानने का मौका मिला। योग के अनेक आयामों को सीखने के साथ-साथ अनेक अभ्यासों को करने का मौका भी प्राप्त हुआ। सुबह से शाम तक समय के हर पल को जीने का अनुभव प्राप्त हुआ।

– शत्रुघ्न कुमार, रामगढ़

ना शोर था ना दिखावा, बस शांति का एहसास।
आश्रम ने सिखा दिया जीने का असली राज़॥

सेवा, प्रार्थना, सत्संग और सात्त्विक भोजन – आश्रम की हर चीज में मैंने भरपूर दिव्यता अनुभव की। यहाँ खुद को समझ आया खुद के बारे में। कूड़ेदान और शौचालय की सफाई ने मेरे अन्दर की घृणा को कम कर दिया। अब न तो बहुत खुशी है और न बहुत दु:ख, बस एक अलग-सी गहरी शांति की अनुभूति। आश्रम, गुरु और ईश्वर को तहे दिल से धन्यवाद जिन्होंने जीवन को एक नये, सुंदर ढंग से देखने का अवसर दिया।

– नीलांजना कुमारी, राँची

आश्रम में कुछ दिन बिताने से मुझे दैनिक जीवन में अनुशासन का महत्त्व समझ मे आया, जीवन को उच्चतम तरीके से जीने की दिशा मिली और आनन्द का मार्ग मिला। मेरा अनुभव शायद मैं शब्दों में न लिख सकूँ, परन्तु मैं यहाँ से जो लेकर जा रही हूँ उसे अपने और अपने परिवार के जीवन में समाहित करने की पूरी कोशिश करूँगी।

– सीमा चक्रवर्ती, राँची

मैं जब आश्रम आई थी तो मेरे मन और शरीर में बहुत तकलीफ थी, परन्तु यहाँ आकर मन में बहुत शान्ति आई तथा शारीरिक कष्ट भी दूर हुआ। यहाँ आकर अनुशासन का पालन कर काफी अच्छा लगा। हनुमान यज्ञ का अनुभव अद्वितीय रहा। योगनिद्रा से मन में बहुत शांति मिली। आश्रम में सबके साथ रहकर सहयोग की भावना बढ़ी। स्वामीजी के सत्संगों से बहुत ज्ञान की प्राप्ति हुई। मुझे यहाँ आकर इतना अच्छा लगा कि अगली बार मैं अपने पूरे परिवार के साथ यहाँ आना चाहूँगी।

– निवेदिता, राँची

यहाँ का अनुभव मेरे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक – तीनों स्तरों पर लाभदायक रहा है, संतुलन लाया है। यहाँ की दिनचर्या और योग के माध्यम से एक अच्छी जीवन शैली जीने का अवसर प्राप्त हुआ और हमने आश्रम में रहकर बहुत शांति का अनुभव किया।

– सौगत कुमार, राँची

आश्रम जीवन का यह मेरा दूसरा अनुभव था। इस बार एक सप्ताह के दौरान योग और आध्यात्मिक जीवन को अच्छी तरह से समझने का मौका मिला। मैं स्वामीजी को हृदय से धन्यवाद करती हूँ कि मेरे जीवन में मंत्र की ज्योति जलायी जिससे मैं आध्यात्मिक यात्रा की ओर पहला कदम बढ़ा पायी।

– लक्ष्मी कुमारी, राँची

मुंगेर आश्रम आने का दूसरी बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँ की यौगिक दिनचर्या, अनुशासित जीवनशैली और कर्तव्यपालन निर्वहन से बहुत कुछ सीखने को मिला। यहाँ से बहुत कुछ अपने साथ समेट कर ले जा रहा हूँ।

– अजय कुमार, राँची

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

SB Collect Online **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

जागो माँ कुल-कुण्डलिनी

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 154, ISBN: 978-81-85787-58-9

यह पुस्तक स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा 1956–62 की अवधि में अपने एक अन्तरंग शिष्य को लिखे गये पत्रों का संकलन है। इस पुस्तक द्वारा स्वामी सत्यानन्द सरस्वती सबको गुरु-शिष्य सम्बन्ध के विकास की दुर्लभ झलक तथा चेतना की जागृति हेतु क्रमिक साधना उपलब्ध कराते हुए अपनी आध्यात्मिक सलाह तथा प्रोत्साहन एवं ब्रह्माण्डीय परिप्रेक्ष्य में मानव अस्तित्व की गहनतर समझ हेतु मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

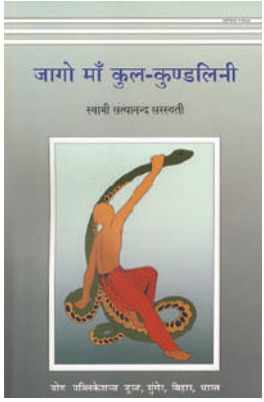

उपलब्ध

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2026

योगपीठ कार्यक्रम

नवम्बर 19–22	*पद्म जयन्ती – योगनिद्रा संगोष्ठी*
दिसम्बर 27–31	*पद्म जयन्ती – यौगिक जीवनशैली महोत्सव*
प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

सितम्बर 28–अक्टूबर 6	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 11–19	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 25–नवम्बर 2	*क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि प्रशिक्षण*
अक्टूबर 2026–अक्टूबर 2027	*संन्यास जीवनशैली अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर–दिसम्बर	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें